प्राकृतिक चिकित्सा की देन

भाग छः, सात, आठ, नौ

छः - सूर्य किरण चिकित्सा

सात - पानी के गुण तथा उपयोग

आठ - मिट्टी के गुण तथा उपयोग

नौ - स्वमूत्र चिकित्सा

राजेश दीक्षित

प्राकृतिक चिकित्सा की देन

[छठा खण्ड]

सूर्य किरण चिकित्सा
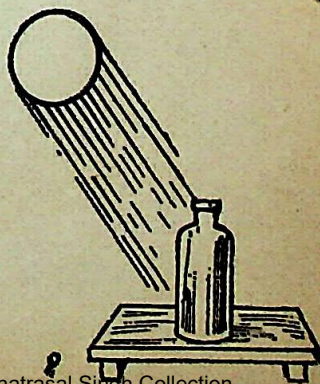
सरल

सूर्य-किरण-चिकित्सा

(इलाजे शम्शी)

[सूर्य की किरणों द्वारा विभिन्न रोगनाशक जल, चूर्ण, गोली, तेल आदि का निर्माण कर, रोगों की सरल-चिकित्सा विधियों का ज्ञान कराने वाली सचित्र पुस्तक]

लेखक
राजेश दीक्षित

देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार, दिल्ली—६

प्रकाशक
देहाती पुस्तक भण्डार

लेखक
राजेश दीक्षित

मूल्य
भारत में : तीन रुपये
विदेश में : साढ़े सात शिलिंग

मुद्रक :
टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस,
सोनीपत (निकट दिल्ली)

समर्पण

जगपाल औषधालय, सिकन्दराराऊ (अलीगढ़)
के संचालक एवं सुप्रसिद्ध चिकित्सक
श्री कृष्णपालजी वैद्य
को
सादर

दो शब्द

सूर्य की किरणों के माध्यम से विभिन्न रंगों की बोतलों में पानी तैयार करके उस रंग-प्रभावित पानी द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा करने का प्रारम्भ सर्वप्रथम अमेरिका के डा० ई० बेविट ने किया था। अपनी सरलता, निर्दोषिता एवं रोग-नाशक शक्ति के कारण यह प्रणाली शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई और अब तो इसे प्राकृतिक-चिकित्सा विधियों में प्रमुख स्थान प्राप्त हो चुका है।

प्रस्तुत पुस्तक में सूर्य-रश्मियों तथा रंगीन बोतलों की सहायता से पानी, घी, तेल, शक्कर आदि तैयार करने की विधियों, रोगानुसार इन वस्तुओं का प्रयोग, रंगीन शीशों की रोशनी डालने की विधि, धूप, स्थान तथा सूर्य-रश्मि चिकित्सा सम्बन्धी अन्य विषयों का सरल भाषा में विस्तृत वर्णन की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक पाठकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए सामग्री संकलन में हमें जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उनके लेखकों के प्रति हम हृदय से आभारी हैं।

गजापाइसा, मथुरा

—राजेश दीक्षित

विषय-सूची

सूर्य-किरण-चिकित्सा

(इलाजे शम्शी)

सूर्यातयः स्वेदवहः सर्वं रोग विनाशकः।
भेदच्छेदकरश्चैव बलोत्साहविवर्धनः ॥

× × ×

पद्रु विस्फोट कुष्टघ्नः कामलाशोधनाशकः।
ज्वरातिसारशूलानां हारको नात्र संशयः ॥

× × ×

सूर्य की किरणें और रंग

पुराणों में भगवान् भुवन-भास्कर (सूर्य) के रथ के सात घोड़े कहे गए हैं। यथार्थ में यह कल्पना सूर्य की किरणों में पाये जाने वाले सात रंगों के कारण ही की गई होगी।

सामान्य दृष्टि से देखने पर हमें सूर्य की किरणों का रंग श्वेत दिखाई देता है, परन्तु जब बिल्लौरी कांच के टुकड़े से देखा जाता है तब सूर्य की किरणों में निम्नलिखित सात रंग स्पष्ट दिखाई देते हैं—

(१) लाल (Red)।

(२) हल्का नीला या आसमानी (Light Blue)।

(३) बैंगनी (Violet)।

(४) पीला (Yellow)।

(५) हरा (Green)।

(६) गहरा नीला (Indigo or Deep Blue)।

(७) नारंगी (Orange)।

ये सातों रंग जब एक साथ मिल जाते हैं तो श्वेत रंग का आकार धारण कर लेते हैं, इसीलिए सूर्य की सात रंग वाली किरणें सम्मिलित रूप में हमें श्वेत रंग की उज्जवल दिखाई देती हैं।

ग्रहों के रंग

ज्योतिष शास्त्र में लिखा है कि सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते

हुए अपनी-अपनी किरणें पृथ्वी पर डालते हैं। इन ग्रहों की किरणों के रंग नीचे लिखे अनुसार होते हैं—

(१) चन्द्रमा—इसका रंग चांदी के समान रुपहला है।

(२) मंगल—इसका रंग लाल है।

(३) बुध—इसका रंग पीला है।

(४) बृहस्पति—इसका रंग सुनहरी (नारंगी) है।

(५) शुक्र—इसका रंग नीला है।

(६) शनि—इसका रंग गहरा नीला है।

(७) राहु—यह पृथ्वी का ही नाम है और इसका रंग काला है।

(८) केतु—यह पृथ्वी की छाया का नाम है और इसका रंग हल्का नीला (आसमानी) है।

उक्त ग्रहों के रुपहला, लाल, पीले, सुनहरी, नीले, गहरे नीले, काले तथा हल्के नीले के सम्मिश्रण से श्वेत रंग बनता है। ये सातों ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हुए पृथ्वी पर अपनी विभिन्न रंग की किरणों की वर्षा करते हैं। प्रत्येक ग्रह की गति अलग-अलग होने के कारण किसी स्थान पर किसी ग्रह की किरणें अधिक और किसी की कम पड़ती हैं। सूर्य की परिक्रमा करते हुए इन ग्रहों की किरणें मुख्यतः चन्द्रमा पर पड़ती हैं, परन्तु जिस समय इनकी गति सीधी अथवा तिरछी होती है, उस समय इनकी किरणें सूर्य-किरणों को भेदती हुई पृथ्वी पर भी आ पहुंचती हैं। पृथ्वी पर जहां सूर्य की किरणें पड़ती हैं; वहीं ग्रहों की किरणें भी पड़ने से अलग-अलग परिणाम दिखाई देते हैं।

सूर्य उष्ण है, चन्द्रमा शीतल है, मंगल उष्ण है, बुध नपुंसक है, बृहस्पति मेदवान (मांसल) है, शुक्र शक्तिवर्द्धक है तथा शनि

उन्मादकारी है। अस्तु, जिस स्थान पर जिस ग्रह की किरणों की अधिकता होती है, वहां वैसे ही लक्षण दिखाई देते हैं, परन्तु सूर्य इन सभी ग्रहों से अधिक शक्तिशाली है और उसकी किरणें पृथ्वी पर सीधी तथा सर्वाधिक पड़ती हैं। उसकी किरणों में स्वयं ही सात रंग होने के कारण वह प्रत्येक वस्तु पर अपना अलग-अलग प्रभाव डालने में भी अधिक समर्थ है, अतः जब सूर्य की किरणों का किसी ग्रह की पृथ्वी पर पड़ने वाली सीधी किरणों के साथ संवेग हो जाता है, तो उन दोनों का सम्मिलित प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए यदि पृथ्वी पर सूर्य की किरणों के अतिरिक्त मंगल ग्रह की किरणें भी पड़ रही हों तो कालरा, चेचक, मूर्च्छा आदि उष्णता प्रधान रोगों की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, क्योंकि मंगल का लाल रंग गर्मी को बढ़ाने वाला होता है। सूर्य की किरणों के साथ उसका प्रभाव और भी बढ़ जाता है। इसी प्रकार सूर्य की लाल रंग की किरणें जिस स्थान पर अधिक इकट्ठी हो जाती हैं, वहां स्थानीय भूकम्प आदि के उपद्रव घटित होते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की किरणों का सूर्य-किरणों के साथ संयोग होने पर आकाश में धूल उड़ना, अनावृष्टि, बहुवृष्टि, अमृतवृष्टि, विशेष प्रकार के जीवों का उत्पन्न होना, दुर्घटनाओं का घटित होना आदि शुभाशुभ प्रभाव प्रकट होते हैं।

ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुओं तथा जीवधारियों में इन्हीं सात रंगों का मिश्रण है। मानव-शरीर में जब किसी रंग की कमी या अधिकता हो जाती है, तब उसमें विभिन्न प्रकार के रोग अथवा लक्षण प्रकट होते हैं।

किस रंग का क्या मुख्य गुण है—इसे आगे लिखे अनुसार समझना चाहिए।

विभिन्न रंगों के गुण

(१) लाल रंग—यह रंग गरम है । सहानुभूतिक स्नायुमण्डल पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। यह धमनी के रक्त तथा स्नायुओं को उत्तेजित करता है।

शरीर में जब इस रंग की वृद्धि हो जाती है, तब मल, मूत्र, नेत्र और त्वचा पर पीलापन दिखाई देने लगता है, इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं, ठंडे पदार्थों का सेवन करने की इच्छा होती है, संताप, मूर्च्छा, अनिद्रा, तृषा, दाह आदि के लक्षण प्रकट होते हैं, ज्वर, अतिसार, पेट में ऐंठन, संधिवात, प्रमेह, सूजन, गर्मी के विकार, खाज, दाद, फोड़ा-फुन्सी, नासूर, अजीर्ण, ज्वर, विसर्प, चेचक, पाण्डु, श्वासोच्छवास में वृद्धि आदि रोग उत्पन्न होते हैं, जीभ और तालु में खुश्की आ जाती है तथा त्वचा फट जाया करती है।

शरीर में लाल रंग की कमी होने पर कम्प बढ़ जाता है, ठंड लगती है तथा मंदाग्नि, क्षय, शीत एवं वातरोग उत्पन्न होते हैं।

(२) पीला रंग—यह रंग प्रसन्नतादायक तथा स्वास्थ्यप्रद है। यह मस्तिष्क, प्लीहा तथा यकृत् को शक्ति देता है। यह कुंठित बुद्धि को विकसित एवं पक्षाघात तथा नपुंसकता को दूर करता है। यह हल्का रेचक भी है। इसके कारण मल-मूत्र खुलकर आते हैं।

शरीर में पीले रंग की वृद्धि हो जाने पर कम्प, कृशता, अशक्ति, अनिद्रा, प्रलाप, भ्रम, म्लानता, गुदा के रोग, मल-मूत्र सम्बन्धी रोग, यकृत्-विकार, आमाशय में दाह, आधा सीसी, मधुमेह, ज्वर, क्षय, कण्ठमाला, आमवात, निरन्तर ज्वर, तेजहीनता आदि रोग प्रकट होते हैं।

शरीर में पीले रंग की कमी हो जाने पर मेद रोग, गुल्मशूल,

योनिजन्य शूल, कृमि, हृदय रोग, फुफ्फुस सम्बन्धी रोग, बद्ध कोष्ठ तथा सूजन आदि रोग उत्पन्न होते हैं एवं ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि और शरीर की मानसिक एवं वाचिक शक्तियों में कमी आ जाती है।

(३) हल्का नीला रंग—यह रंग बहुत ठंडा होता है। इसमें सड़न को दूर करने वाले गुण हैं, अतः यह त्वचा के रोग, फोड़ा-फुन्सी, नासूर आदि में लाभ करता है। यह स्नायुओं को शक्ति देता है। प्रदाह, ज्वर, गरमी के कारण होने वाले दर्द, रक्त-प्रवाह, रजःस्राव की अधिकता, हैजा तथा गरमी के विकारों को दूर करता है। यह प्यास को शान्त करता तथा आमाशय के उत्तेजित होने पर लाभ पहुंचाता है।

शरीर में इस रंग की कमी होने पर ज्वर, अतिसार आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

(४) हरा रंग—यह रंग नीले-पीले रंग के मिश्रण से बनता है। यह मुख्यतः शीतल है। यह आंखों के लिए शीतल तथा शक्तिवर्द्धक है। स्त्रियों के मूर्च्छा तथा योनि-प्रदाह एवं जननेन्द्रियों की उत्तेजना, अधिक उष्णता, वीर्य का अपने आप निकल जाना, फोड़ा-फुन्सी, घाव, नासूर, भगन्दर, उकवत आदि रोगों में लाभदायक है।

शरीर में हरे रंग की वृद्धि हो जाने पर अंग-प्रत्यंग दुखने लगते हैं। हरे रंग की कमी होने पर फोड़ा-फुन्सी, दाद, खाज, नासूर आदि त्वचा रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(५) नारंगी रंग—यह रंग भी गरम है, परन्तु इसकी गरमी लाल रंग से कम होती है। गहरा नारंगी अर्थात् जिसमें लाल रंग की अधिकता हो, वह अधिक गरम होता है। यह रंग लाल और पीले रंग के मिश्रण से तैयार होता है। यह रंग स्नायु एवं रक्त को उत्तेजित करता है।

(६) गहरा नीला रंग—यह रंग ठंडा होता है। अतः यह प्यास को बुझाने वाला, ठंडा, संकोचक, ज्वर-नाशक एवं स्नायुओं को सशक्त बनाता है।

इस रंग में लाल तथा हल्के नीले रंग का मिश्रण होता है। यह सड़न को दूर करने वाला (ऐन्टीसैप्टिक), कीटाणुनाशक, योनि, आमाशय, अण्डकोषों की सूजन तथा प्रदाह में लाभकारी है।

शरीर में गहरे नीले रंग की वृद्धि हो जाने पर मल, मूत्र, त्वचा, नख एवं नेत्रों का रंग श्वेत हो जाता है। अतिनिद्रा, ग्लाग्नि, संधि-नाश, शिथिलता, श्वास, कास आदि के लक्षण प्रकट होते हैं। जीभ का रंग सफेद हो जाता है, आंखें निस्तेज, स्रावयुक्त एवं कीचड़ से भर जाती हैं।

इस रंग की कमी होने पर संधिवात, प्रमेह, केश झड़ना, दाह, मूर्च्छा, दस्त, मंदाग्नि, भ्रम आदि रोग उत्पन्न होते हैं। क्रोध, चिड़-चिड़ापन, सुस्ती, अधिक नींद आना, शरीर का गरम रहना आदि लक्षण भी इसी रंग की कमी के द्योतक हैं।

(७) बैंगनी रंग—इस रंग के गुण भी गहरे नीले रंग जैसे ही हैं। इससे नींद अच्छी आती है। इसके प्रभाव से रक्त के लाल कणों में वृद्धि होती है, अतः यह रंग रक्ताल्पता को भी दूर करता है।

कौन-सा रंग किस रंग का मारक है

लाल रंग का मारक हल्का नीला, हरा तथा नीला रंग है।

पीले रंग का मारक नीला रंग है।

हल्के नीले, हरे तथा नीले रंग का मारक पीला रंग है।

मुख्य तीन रंग

जिन सात रंगों का वर्णन पीछे किया गया है, उनमें मुख्य रंग तीन ही हैं—

(१) लाल, (२) पीला और (३) गहरा नीला।

शेष रंग इन्हीं रंगों के परस्पर मिश्रण से तैयार होते हैं।

चार भाग लाल तथा चार भाग पीले रंग से नारंगी रंग तैयार होता है।

चार भाग नीले तथा चार भाग पीले रंग से हरा रंग तैयार होता है।

आठ भाग नीले तथा पांच भाग लाल रंग से बैंगनी रंग तैयार होता है।

चार भाग लाल और पांच भाग हल्के नीले रंग से गहरा नीला रंग तैयार होता है।

आयुर्वेद और रंग

आयुर्वेद के मतानुसार सभी रोगों की उत्पत्ति के मूल कारण वात, पित्त और कफ हैं। इन तीनों धातुएं के प्रतीक कौन-कौन से रंग हैं, इसे नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिए—

(१) वात का रंग पीला।

(२) पित्त का रंग लाल।

(३) कफ का रंग नीला।

गुण और रंग

सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—इन तीनों गुणों के प्रतीक निम्नलिखित रंग होते हैं—

(१) सतोगुण—नीला।

(२) रजोगुण—लाल।

(३) तमोगुण—पीला।

०

सूर्य-रश्मियों द्वारा औषधियां तैयार करने की विधियां

सूर्य-किरण चिकित्सा पद्धति में विभिन्न रंगों की बोतलों में पानी, शक्कर, मिश्री, शक्कर की गोलियां, घी, तेल और वायु को तैयार किया जाता है।

इन वस्तुओं को तैयार करने की विधियां नीचे लिखे अनुसार समझनी चाहिये—

पानी तैयार करना

जिन सात रंगों का वर्णन पिछले प्रकरण में किया जा चुका है, उन्हीं रंगों की कांच की गोल बोतलें ले आयें। बोतलें चपटी न हों, यह ध्यान रखना चाहिए। चपटी बोतलों पर सूर्य की किरणों का प्रभाव चारों ओर से एक समान नहीं पड़ता। इसीलिए गोल बोतलें व्यवहार में लेने का नियम है।

जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है कि मुख्य रंग केवल तीन ही हैं—(१) लाल, (२) पीला और (३) नीला। अतः यदि सभी रंगों की बोतलें न मिल सकें तो केवल इन्हीं तीन रंगों की बोतलों से भी काम चल सकता है।

पिछले प्रकरण में यह बताया जा चुका है किन दो रंगों के मिलने पर कौन-सा तीसरा रंग तैयार होता है। उसी के अनुसार उक्त

तीन रंगों के मेल से अपनी आवश्यकता के अनुरूप रंग की औषधि तैयार कर लेनी चाहिए।

सूर्य-किरण चिकित्सा में मुख्य रूप से रंगीन बोतलों के पानी का ही प्रयोग किया जाता है। पानी तैयार करने की विधि इस प्रकार है--

बोतलों की सफाई

बोतल को खूब अच्छी तरह भीतर-बाहर से साफ कर लें। कहीं जरा-सा भी दाग-धब्बा न रहने पाए। बोतलों की सफाई के लिए सोडा, आलू, गरम पानी, रेत-कंकड़ी तथा ब्रुश का प्रयोग किया जा सकता है। इन वस्तुओं द्वारा सफाई करने के बाद उन्हें स्वच्छ पानी से खूब धो लेना चाहिए, ताकि उक्त वस्तुओं का तनिक-सा भी प्रभाव उनके ऊपर न रहे।

पानी कैसा होना चाहिए

बोतलों में भरने के लिए बरसाती पानी सबसे अच्छा रहता है। इस पानी को बरसात के दिनों में छत के ऊपर कोई चौड़े मुंह वाला बर्तन रखकर इकट्ठा किया जा सकता है। परन्तु पहली दो बरसातों का पानी व्यवहार में नहीं लेना चाहिए, क्योंकि उसमें गर्द-गुबार के अंश रहते हैं। बाद की बरसातों का पानी स्वच्छ और निर्मल होता है।

यदि बरसाती पानी न मिले तो झरने, नदी अथवा तालाब के शुद्ध एवं स्वच्छ पानी का व्यवहार करना चाहिए। यदि यह भी न मिले तो कुएं अथवा नल के पानी का उपयोग किया जा सकता है, परन्तु प्रत्येक स्थिति में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पानी एकदम स्वच्छ, निर्मल तथा ताजा ही होना चाहिए।

चिकित्साशास्त्र में उस पानी को सर्वश्रेष्ठ रोग नाशक कहा गया है, जिस पर दिन के समय सूर्य की तथा रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणें निरन्तर पड़ती रहती हों। ऐसा पानी नदी, तालाब अथवा कुएं का ही होता है।

जो भी पानी लिया जाय, उसे चार तह के कपड़े में छानकर इच्छित रंग की बोतलों में इतना भरना चाहिए कि बोतल एक चौथाई खाली रहे।

बोतल का ढक्कन

बोतलों के ढक्कन जहां तक संभव हो सके उसी रंग के होनें चाहिए, जिस रंग की बोतल हो। यदि वैसे ढक्कन न मिल सकें तो कार्क को भली-भांति लगा देना चहिए। ढक्कन या कार्क को इस प्रकार कसकर लगाना चाहिए कि उसमें हवा का प्रवेश किसी भी प्रकार न हो सके। इस तरह से जब बोतलों को पानी से भर दिया जाय और उनके मुंह को भली-भांति बन्द कर दिया जाए, तब उन्हें भली-भांति पोंछकर धूप में रखना चाहिए। यदि बोतल के ऊपर उसी रंग के कांच का ढक्कन लगाया जाय, तो वह सर्वोत्तम रहता है।

बोतल को धूप में रखना

बोतलों को धूप में रखते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्हें जमीन के फर्श पर न रखा जाए, अन्यथा जमीन की गर्मी उनके रोग-नाशक प्रभाव को समाप्त कर देगी।

बोतलों को किसी लकड़ी की चौकी, स्टूल अथवा पट्टे के ऊपर रखना चाहिए। लकड़ी की चौकी, स्टूल अथवा पट्टा ऐसा होना

चाहिए, जिस पर किसी प्रकार की पालिश अथवा रंग न हो। रंगीन होने पर उस रंग का प्रभाव बोतलों के पानी के गुण नष्ट कर देता है।
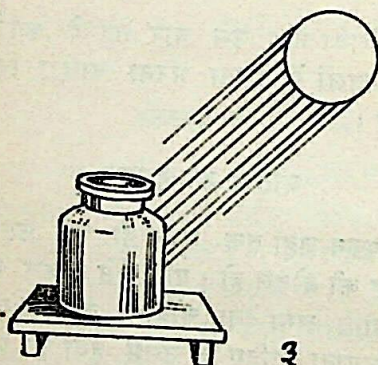
३

बोतलों को ऐसे खुले हुए स्थान में रखना चाहिए जहां प्रातः से सायं तक उन्हें निरन्तर तथा समान रूप से धूप लगती रहे, उन पर किसी प्रकार की छाय न पड़े तथा उनके आस-पास कहीं कोई झाड़ी, वृक्ष, कूड़ा-करकट, धूल, मिट्टी तथा धुआं आदि न हो।

बोतलों को एक-दूसरी से इस प्रकार अलग-अलग और इतने अन्तर पर रखना चाहिए कि किसी भी बोतल पर दूसरी बोतल की छाया न पड़े,अन्यथा उनके पानी के रोग-नाशक गुण में कमी आ जायेगी।

धूप में रखने का समय

प्रातः ६ बजे से सायं ५ बजे तक बोतलों को धूप में रखना चाहिए। जाड़े के दिनों में ४ बजे तक रखना पर्याप्त है। किसी भी स्थिति में बोतलों को छाया में नहीं रखना चाहिए। जब यह

प्रतीत हो कि अब बोतलों के ऊपर धूप नहीं गिरेगी, तभी उन्हें तुरन्त उल्टा लेना चाहिए।

पानी तैयार होने का समय

सामान्यत: बोतलों का पानी ४ घण्टे में ही तैयार हो जाता है, परन्तु यदि बोतलों को अधिक देर तक धूप में रखा जाये तो उससे कोई हानि नहीं है अपितु वह अधिक लाभदायक ही रहता है।

पानी के तैयार होने की सामान्य-सी परीक्षा यह है कि जब बोतल की खाली भाप में पानी के बबूले बनते हुए दिखाई दें तो यह समझ लेना चाहिए कि पानी तैयार हो गया है। बबूलों के बन जाने के बाद भी यदि धूप हो तो उसमें बोतलों को रक्खा रहने देना चाहिये उससे पानी के गुणों में वृद्धि ही होगी।

तैयार पानी को रखना

धूप में तैयार किये गए पानी को यदि उसी बोतल में रखा जाए, जिसमें कि पानी को तैयार किया गया है, तो वह सर्वोत्तम है। यदि उस बोतल को खाली करना आवश्यक हो तो पानी को सफेद रंग की कांच की स्वच्छ बोतल में रखना चाहिए।

यदि उसी बोतल में पानी को रहने दिया जायेगा तो पानी का गुण ६-७ दिन तक नष्ट नहीं होगा, परन्तु यदि पानी को सफेद रंग की बोतल में भरकर रखा जायेगा तो दो दिन बाद उसका गुण नष्ट हो जायेगा। एक रंग की बोतल के तैयार पानी को किसी दूसरे रंग की बोतल में भरकर नहीं रखना चाहिए।

तैयार पानी की बोतल के ऊपर चांद, नक्षत्र, बिजली अथवा दीपक आदि किसी का भी प्रकाश नहीं पड़ने देना चाहिए अन्यथा वह पानी गुणहीन हो जायेगा। इसके लिए बोतलों को किसी ऐसी

बन्द आल्मारी में रखना चाहिए, जहां सूर्य के अतिरिक्त और किसी प्रकाश के पहुंचने की सम्भावना न रहे।

आल्मारी में भी विभिन्न रंगों की बोतलों को एक-दूसरी के पास नहीं रखना चाहिए। एक बोतल की परछाईं भी दूसरी बोतल पर नहीं पड़ने देना चाहिए। अच्छा तो यह रहे कि जिस आल्मारी में बोतलों को रखना हो, उसमें अलग-अलग खाने बनवा दिये जाएं। इससे न तो एक बोतल की परछाईं दूसरी पर पड़ेगी और न बोतलों के पास-पास रहने का ही भय रहेगा।

बोतलों के ऊपर कागज लपेटना

अनेक बार ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब इच्छित रंग के कांच की बोतल नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में सफेद रंग के कांच की बोतल के ऊपर इच्छित रंग का कागज लपेटकर उसी बोतल से पानी तैयार किया जा सकता है, परन्तु ऐसा पानी कुछ न्यून गुण वाला अवश्य रहेगा। फिर भी अभाव में न कुछ से कुछ अच्छा होता है, इस सिद्धांतानुसार जब रंगीन बोतल नहीं मिले, तब इस उपाय का आश्रय लेना चाहिए।

तैयार पानी की बोतलों को आल्मारी में रखते समय, जिस रंग की बोतल हो उसके ऊपर यदि उसी रंग का कागज भी लपेट दिया जाय तो अधिक अच्छा रहेगा। विशेष कर उस स्थिति में जबकि रंगीन बोतल के तैयार पानी को सफेद रंग की बोतल में भरकर रखा जा रहा हो। इससे दो लाभ होंगे—पहला यह कि तैयार पानी के गुण में वृद्धि होगी और दूसरा यह कि बोतल के ऊपर उसी रंग का कागज भी लिपटा होने से यह जानने में सुविधा रहेगी कि इस बोतल में किस रंग की बोतल का पानी भरा हुआ है।

बोतल की दैनिक सफाई

जिस रंगीन कांच की बोतल में पानी तैयार किया जाता हो, उसकी सफाई यदि प्रतिदिन की जा सके तो सर्वोत्तम है। यदि प्रतिदिन सफाई करना संभव न हो तो कम-से-कम तीसरे दिन तो भली-भांति सफाई अवश्य ही कर देनी चाहिये। बोतल के भीतर तथा बाहर किसी भी प्रकार का मैल न जमने पाये, इस सम्बन्ध में विशेष सावधान बने रहने की आवश्यकता है।

आवश्यकता के समय

धूप में पानी की बोतल को कब तक रखा जाय, इस सम्बन्ध में पहले बताया जा चुका है। परन्तु यदि किसी समय पानी को जल्दी व्यवहार में लाने की आवश्यकता हो तो जब बोतल में भाप के बबूले उठने लगें, उसी समय बोतल को धूप में से उठाकर पानी को ठण्डा करने के बाद व्यवहार में लाया जा सकता है। यद्यपि ऐसा पानी न्यून गुण वाला होता है।

पानी का व्यवहार कब करें

धूप में तैयार किया हुआ पानी जब भली-भांति स्वतः ही ठण्डा हो जाय, तभी उसको प्रयोग में लेना चाहिए। जब तक पानी गरम रहे, तब तक उसे व्यवहार में नहीं लेना चाहिये। ऐसा पानी लाभ के स्थान पर हानिकारक सिद्ध होता है। पानी को स्वतः ही ठण्डा होने देना चाहिए। बर्फ, हवा अथवा अन्य किसी उपाय से उसे जल्दी ठण्डा करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उसके गुण नष्ट हो जाते हैं।

शक्कर तैयार करना

बरसात के दिनों में आकाश में बादल छाये रहने के कारण कई-

कई दिनों तक धूप के दर्शन नहीं होते। ऐसे समय में रंगीन बोतलों का पानी तैयार करना असम्भव हो जाता है। उस समय के लिए शक्कर तैयार की जाती है।

शक्कर तैयार करने की विधि यह है—

इच्छित रंग की बोतल अथवा कांच के अमृतबान में शक्कर को भरकर प्रतिदिन धूप में प्रातः ९-१० बजे से सायं ४-५ बजे तक के लिए रख दें। बोतल या अमृतबान को लकड़ी के पट्टे, चौकी अथवा स्टूल के ऊपर रखना चाहिये। साथ ही उन सभी हिदायतों का पालन करना चाहिए, जो पानी की बोतलें तैयार करने के लिये बताई जा चुकी हैं।

शक्कर तैयार होने का समय

शक्कर की बोतल अथवा अमृतबान को कम-से-कम एक मास तक धूप में रखना आवश्यक है। यदि तीन मास तक रखा जा सके तो सर्वोत्तम है। इस अवधि में सर्वोत्तम गुणकारी शक्कर तैयार हो जाती है।

शक्कर को तैयार करने लिये फाल्गुन से ज्येष्ठ मास तक का समय सर्वोत्तम रहता है।

धूप में शक्कर की बोतल या अमृतबान को रखते समय उसे प्रतिदिन भली-भांति हिला अवश्य लेना चाहिए। इससे सम्पूर्ण शक्कर में किरणें समान रूप से प्रवेश कर जाती हैं,अन्यथा कहीं उनका प्रभाव कम और कहीं अधिक हो जाता है।

शक्कर का प्रयोग

जब पानी तैयार न रहे, उस समय सफेद अथवा इच्छित रंग की बोतल में आधा सेर स्वच्छ पानी को भरकर उसमें पूर्वोक्त

विधि से तैयार की गई शक्कर को तीन माशे भर डालकर बोतल को इतना हिलाना चाहिये कि शक्कर उसके पानी में भली-भांति घुल जाय। इस प्रकार शक्कर द्वारा तैयार किये गये पानी में भी रंगीन
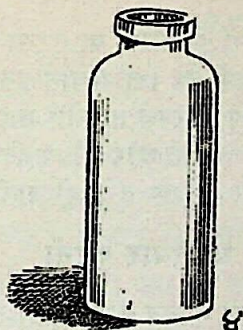
बोतल द्वारा धूप में तैयार किये पानी जैसे ही गुण आ जाते हैं अतः इस शक्कर के पानी का प्रयोग भी उसी पानी की तरह किया जा सकता है। यह तैयार की हुई शक्कर छह मास तक प्रयोग में लाई जा सकती है।

गोलियां तैयार करना

होम्योपैथिक औषधियों में इस्तमाल की जाने वाली जो सादा मीठी गोलियां आती हैं, उन्हें भी शक्कर की ही भांति इच्छित रंगों की बोतलों में भरकर तथा धूप में रखकर तैयार किया जा सकता है।

इन गोलियों को ३० दिन से लेकर ६० दिन तक धूप में रखना चाहिये। शेष सब बातें शक्कर की भांति ही समझनी चाहिएं। इन गोलियों का गुण भी शक्कर जैसा ही होता है।

इनकी मात्रा १ या २ गोली है। रोग एवं रोगी की अवस्थानुसार इन गोलियों को २ से ३ बार तक दिया जा सकता है।

तेल तैयार करना

इच्छित रंग की बोतलों में अलसी या सरसों का तेल इतना भरें कि एक चौथाई बोतल खाली रहे। तत्पश्चात् उन बोतलों को पूर्वोक्त विधि से दो महीने तक धूप में रक्खें तो रोग नाशक गुणकारी तेल तैयार हो जाता है। यदि तेल को और अधिक दिनों तक धूप में रखा जाये तो उसके गुण में और अधिक वृद्धि हो जाती है।

घी तैयार करना

इच्छित रंग की बोतलों में शुद्ध गाय का घी तीन चौथाई भरकर पूर्वोक्त विधि से कम-से-कम ४० दिन तक धूप में रखने से रोग-नाशक घी तैयार हो जाता है। यदि घी को और अधिक दिनों तक धूप में रक्खा जाय तो उसके गुणों में और अधिक वृद्धि हो जाती है।

रोगानुसार चिकित्सा

सूर्य-किरणों द्वारा रंगीन बोतलों की सहायता से तैयार किए जाने वाले रोग-नाशक पानी, शक्कर, गोलियां, तेल और घी तैयार करने की विधियों का वर्णन पिछले प्रकरण में किया जा चुका है। अब औषध (रंगीन बोतलों का पानी, शक्कर, तेल अथवा घी) की मात्रा तथा रोगानुसार चिकित्सा के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है।

औषध की मात्रा कब दी जाए

तीव्र रोगों में एक दिन में ४ से ८ अथवा इससे भी अधिक बार औषध दी जा सकती है, परन्तु जीर्ण रोगों में एक दिन में २ से ४ बार ही देनी चाहिए।

सामान्यतः एक दिन में औषध की चार खुराकें देनी हों तो प्रातः ८ बजे, मध्याह्न १२ बजे, सायाह्न ४ बजे तथा रात्रि ८ बजे देनी चाहिए। यदि दिन में ६ खूराक दवा देनी हो तो २-२ घण्टे के अन्तर से एक-एक खुराक देनी चाहिए और यदि ८ खुराक देनी हो तो डेढ़-डेढ़ घण्टे के अन्तर से देनी चाहिए।

हैजा, प्लेग, वमन, दस्त तथा ज्वर की तीव्र अवस्था में १-१ घण्टे बाद भी औषध सेवन कराई जा सकती है।

नीले रंग की बोतल की औषध को भोजन से १ घण्टा पूर्व तथा २ घण्टे बाद तक नहीं देनी चाहिए। जीर्ण रोगों में नीले रंग की औषध की दिन में केवल दो खुराकें देना ही पर्याप्त है। एक खुराक प्रातःकाल तथा दूसरी तीसरे प्रहर में देनी चाहिए।

आयु के अनुसार औषध की मात्रा

विभिन्न आयु के रोगियों को सामान्यतः औषध की मात्रा नीचे लिखे अनुसार देनी चाहिए। यह मात्रा रंगीन बोतलों के पानी अथवा रंगीन शक्कर द्वारा तैयार किये गए पानी के लिए है।

१ दिन से १ मास तक की आयु वाले बालक को चाय के छोटे चम्मच की आधी मात्रा।

१ मास से ३ मास तक के बालक को चाय के छोटे पौन चम्मच के बराबर।

३ मास से १ वर्ष तक के बालक को चाय के एक छोटे चम्मच के बराबर।

१ वर्ष से ५ वर्ष तक के बालक को चाय के दो छोटे चम्मच के बराबर।

५ वर्ष से १० वर्ष तक के बालक को चाय के चार छोटे चम्मच के बराबर।

१० वर्ष से १५ वर्ष तक के बालक को आधा औंस।

१५ वर्ष से ऊपर की आयु वालों को १ औंस।

रोग तथा रोगी के बलाबल के अनुसार औषध की मात्रा में आवश्यक घट-बढ़ भी की जा सकती है।

रोग का निदान

औषध देने से पूर्व रोग का निदान कर लेना आवश्यक है। यदि शरीर में सभी रंगों का अनुपात ठीक रहे तो वह स्वस्थ बना रहता है। जब किसी रंग की घट-बढ़ अथवा अभाव होता है, तभी शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है।

शरीर में किस रंग की कमी और अधिकता से कौन-कौन से रोग उत्पन्न होते हैं—इन्हें संक्षेप में नीचे लिखे अनुसार समझ लेना चाहिए—

(१) नीले रंग की कमी तथा लाल रंग की वृद्धि से ज्वर, अतिसार, स्नायविक उत्तेजना, पेट की मरोड़ आदि रोग होते हैं।

(२) गहरे नीले रंग की कमी तथा लाल रंग की वृद्धि से प्रदाह, प्रमेह, पथरी, नेत्र-रोग, केशों का झड़ना, खट्टी-कड़वी डकारें आना तथा जोड़ों का अकड़ना आदि रोग होते हैं।

(३) पीले रंग की कमी तथा नीले रंग की अधिकता से शूल, गुल्फ, कब्ज, कृमि, सूजन, पसली का दर्द, मसूढ़ों का दर्द एवं मोटापा आदि रोग होते हैं।

(४) हरे रंग की कमी तथा लाल रंग की अधिकता से खाज, खुजली, फोड़े-फुंसी आदि त्वचा रोग होते हैं।

(५) सातों रंगों की कमी से शरीर में दुर्बलता आती है।

संक्षेप में, नीले रंग की वृद्धि होने पर कफजन्य रोग, लाल रंग की वृद्धि होने पर त्वचा में सूजन तथा गर्मी से उत्पन्न होने वाले विकार, प्रदाह आदि तथा पीले रंग की वृद्धि होने पर दर्द, चीस उठना आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

किस रंग से किस रंग का विकार मिटता है

लाल रंग के बढ़ाने से नीले रंग का, हरे रंग को बढ़ाने से लाल रंग का, पीले रंग के बढ़ाने से लाल-नीले मिश्रित अर्थात् बैगनी रंग का विकार दूर होता है।

नीले रंग के व्यवहार से लाल, पीले तथा नारंगी रंग की अधिकता से होने वाले रोग दूर होते हैं।

रोगानुसार चिकित्सा

जब रोग का भली-भांति निश्चय हो जाए, तब उसे दूर करने के लिए नीचे लिखे अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। सुविधा के लिए यहां पर लाल रंग की बोतल के पानी को लाल पानी, नीले रंग की बोतल के पानी को नीला पानी तथा पीले रंग की बोतल के पानी को पीला पानी, इसी प्रकार जिस रंग की बोतल में भरकर पानी, शक्कर, गोली, घी या तेल को तैयार किया गया है, उसी रंग के नाम के साथ लाल शक्कर, नीला तेल, हरी गोली आदि का प्रयोग किया गया है।

यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि विभिन्न रंगों की बोतल में तैयार किये हुए पानी, शक्कर, गोली, घी, तेल आदि का रंग वैसा ही नहीं हो जाता। वे अपने स्वाभाविक रंग में ही रहते हैं। केवल उनमें उस रंग का प्रभाव जज्ब हो जाता है। अस्तु, आगे जहां नीला पानी, नीली शक्कर, नीली गोली, नीला तेल, नीला घी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है, वहां नीली बोतल में उक्त वस्तुओं को तैयार समझना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लें।

इसी उपचार विधि में रंगीन प्रकाश का प्रयोग भी बताया गया है। रंगीन प्रकाश के विषय में अगले प्रकरण में लिखा गया है।

वात ज्वर

पीला पानी तीन भाग, गहरा नीला पानी एक भाग को मिलाकर दिन में तीन या चार बार देना चाहिए।

पित ज्वर

हल्का नीला पानी तीन भाग तथा गहरा नीला पानी एक भाग को मिलाकर दिन में चार बार दें। यदि ज्वर का वेग अधिक हो तो दोनों तरह का पानी सम भाग मिलाकर देना चाहिए।

कफ ज्वर

पीले रंग का पानी तीन भाग, नीले रंग का पानी एक भाग मिलाकर दिन में चार बार दें।

तृतीयक ज्वर

पीला पानी दो भाग तथा गहरा नीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में तीन बार दें।

चातुर्थिक ज्वर

पीला पानी दो भाग तथा गहरा नीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में तीन बार दें।

जीर्ण ज्वर

गहरा नीला पानी तथा पीला पानी बराबर-बराबर मिलाकर दिन में चार बार दें।

अजीर्ण ज्वर

पीला पानी दो भाग तथा हल्का नीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में तीन बार दें।

इनफ्ल्युएंजा

नीला पानी और हरा पानी समभाग मिलाकर दिन में तीन बार दें तथा मुंह पर हरा प्रकाश डालें।

निमोनिया

गहरा नीला पानी हर दो घण्टे बाद दें।

कृमि रोग

हर प्रकार के कृमियों के लिए पीला पानी तीन भाग तथा हरा पानी एक भाग मिलाकर दिन में तीन बार दें।

मोतीझारा

नीला पानी दिन में चार वार दें। यदि कब्ज भी हो तो तीन भाग नीले पानी में एक भाग पीला पानी मिलाकर दें। नीले रंग के कांच का प्रकाश भी डालें।

चेचक

(१) यदि फुंसियां काली, मटमैली, रूखी अथवा सफेद तनी हुई और बहुत भारी हों तथा उनमें खुजली बहुत मचती हो तो गहरा नीला पानी और हल्का नीला पानी बराबर-बराबर मिलाकर तीन-तीन घण्टे के अन्तर पर दें।

(२) यदि फुंसियां लाल, पीली, जलन तथा वेदनायुक्त हों, प्यास और ज्वर की तीव्रता हो तो फीका नीला पानी दो भाग, गहरा नीला पानी एक भाग तथा पीला पानी दो भाग मिलाकर तीन-तीन घण्टे के अन्तर से दें।

चेचक के दानों पर हरा तेल लगाना चाहिए।

मलेरिया ज्वर

नीला पानी दिन में चार वार दें। सिर पर तथा हृदय पर नीले तेल की मालिश करना भी विशेष लाभदायक है।

हृदय की धड़कन

पीले रंग का पानी दिन में चार वार दें।

मानसिक उलझनें

यकृत् पर गहरे नीले तेल की मालिश कराएं।

स्वर में भारीपन

गहरा नीला पानी दिन में तीन बार दें तथा इसी पानी से गरारे भी कराएं।

सूजन

पीला पानी और गहरा नीला पानी समभाग मिलाकर दिन में चार वार दें। यदि पांव तथा पेट पर भी सूजन हो तो लाल तेल की मालिश करें। अन्य स्थानों पर नीले तेल की मालिश करनी चाहिए।

मोटापा

पीला पानी दिन में तीन वार पिलाएं तथा भोजन की मात्रा कम कराएं।

दुबलापन

सफ़ेद रंग की बोतल का पानी दिन में चार वार पिलाएं तथा

भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की मात्रा बढ़वा दें। फल, दूध आदि का विशेष सेवन कराएं।

वीर्य-दोष

यदि वीर्य का रंग गुलाबी, काला या पीला हो, दुर्गन्ध आती हो अथवा खुजली हो तो पीला पानी और हरा पानी समभाग मिलाकर दिन में चार बार छः दिन तक दें। इसके बाद पीले पानी का एनीमा दें। फिर नीला पानी तीन भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर एक सप्ताह तक सेवन कराएं। चिकित्सा प्रारम्भ करने के एक सप्ताह तक रोगी को केवल फलाहार कराएं। तत्पश्चात् दूसरे सप्ताह फल और दूध दें।

उपदंश (आतशक)

हरा पानी दिन में चार बार पीने को दें। आतशक के घावों तथा दिल पर हरे तेल को लगाएं। रोगी को छोटा उपवास कराकर फलाहार पर रखना जल्दी लाभ करता है।

सूजाक

नीला पानी दिन में चार बार पिलाएं तथा नीले रंग के कांच की रोशनी शिश्नेन्द्रिय पर डालें। सादा पानी अधिक से अधिक पीने के लिए कहें तथा शीघ्र लाभ के लिए रोगी को फलाहार पर रखें।

नपुंसकता

नीला पानी दो भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में चार बार पीने को दें। शिश्नेन्द्रिय पर लाल तेल की मालिश करें तथा लाल रोशनी डालें। बाएं कान में भी लाल तेल की ३-४ बूंदें

डालें। छोटा उपवास कराएं तथा एक सप्ताह तक फल और दूध पर ही रखें।

स्वप्नदोष

नीला पानी दिन में चार बार पीने को दें। सिर के पिछले भाग में नीले, हरे अथवा गहरे नीले तेल की मालिश करें। यदि केवल कब्ज के कारण यह रोग हो तो पीला पानी सेवन कराएं। ७ दिन तक केवल फलाहार पर रखें।

अण्ड कोष-वृद्धि

अण्डकोषों पर पहले १ घण्टे तक लाल रोशनी फिर २ घण्टे तक नीली रोशनी डालें तथा पीला पानी दिन में चार बार पीने को दें। एक सप्ताह तक रोगी को फलाहार पर रखें।

पथरी

पीला पानी दिन में चार बार दें। एक सप्ताह तक फलाहार कराएं।

पेशाब में तकलीफ

हल्का नीला पानी दिन में तीन बार दें तथा एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें।

पेशाब निकल जाना

अपने आप पेशाब निकल जाता हो तो मूत्राशय पर हरे रंग की रोशनी डालें। एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें। सोते समय दूध अथवा पानी नहीं पीने देना चाहिए।

गुर्दे की सूजन

नारंगी पानी दिन में चार बार पिलाएं तथा नारंगी रोशनी गुर्दे पर डालें। एक सप्ताह तक फलाहार कराएं।

बहुमूत्र

पीला पानी एक भाग, गहरा नीला पानी एक भाग तथा हरा पानी दो भाग—सबको मिलाकर दिन में चार वार दें। एक सप्ताह तक रोगी को फलाहार पर रखें।

मधुमेह

पीला पानी दो भाग तथा नीला पानी एक भाग मिलाकर दें। दो सप्ताह तक फलाहार पर रखें। प्रतिदिन ४ नीबू तथा १५ पके हुए जामुनों का सेवन कराते रहें।

खूनी बवासीर

हल्का नीला पानी दिन में चार वार दें। यदि रोग की अवस्था तीव्र हो तो हरे पानी का एनिमा भी दें। गुदा के मस्सों पर हल्के नीले रंग की रोशनी डालें। ७ दिन तक फलाहार कराएं और लोह-युक्त फल तथा दूध का सेवन कराते रहें।

बादी बवासीर

गहरा नीला पानी तथा पीला पानी सम भाग मिलाकर दिन में चार वार दें। मस्सों पर हल्के नीले रंग की रोशनी डालें। ७ दिन तक रोगी को फलाहार पर रखें।

गुदभ्रंश

दो भाग हल्का नीला पानी,एक भाग गहरा नीला पानी तथा एक भाग पीला पानी मिलाकर दिन में ४ बार दें। कब्ज होने पर नीले पानी का एनीमा दिलाएं। गुदा पर पीली मिट्टी की पट्टी रखने से जल्दी लाभ होता है। जितने समय तक सम्भव हो, रोगी को फलाहार पर रखें।

गुदा की सिकुड़न

पीला पानी कुछ गरम करके दिन में तीन बार दें। पीले पानी का एनीमा दें तथा पीले तेल का गुदा पर मालिश कराएं। रोगी को एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें।

हैजा

जिन दिनों हैजा फैल रहा हो, उन दिनों उससे बचाने के लिए प्रतिदिन नीला पानी तीन बार पिलाएं। हैजा हो जाने पर हल्का नीला पानी १-१ घण्टे के अन्तर से दें। पेडू पर पीली मिट्टी की पट्टी जल्दी-जल्दी रखें। यदि हाथ-पांव ठण्डे हो जाएं तो लाल पानी अथवा लाल तेल की मालिश कराएं, साथ ही एक खूराक लाल पानी की पिला दें। आराम अनुभव होने पर हल्के नीले रंग का पानी दें। जब रोग ठीक हो जाए तब एक पाव दूध से आरम्भ करके प्रतिदिन एक पाव दूध बढ़ाते जाएं और जब एक सेर दूध भली-भांति पचने लगे, तब उसके साथ रसीले फल खिलाना भी आरम्भ करें। यदि सुविधा हो तो प्रतिदिन मालिश भी करनी चाहिए।

पीलिया (पाण्डु रोग)

गहरा नीला पानी तीन भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर

दिन में चार बार दें। गहरे नीले तेल की मालिश भी करें। यदि रोगी के मुंह अथवा पांवों पर सूजन हो तो हल्का नीला पानी और पीला पानी मिलाकर देना चाहिए। एक सप्ताह तक रोगी को फलाहार पर रखें। लौह-प्रधान खाद्यों का अधिक सेवन करायें।

संग्रहणी

हल्का नीला पानी दिन में चार बार दें। रोगी को दो सप्ताह तक मट्ठे पर रखें। फिर रोटी और सब्जी दें, परन्तु पत्तेदार सब्जियां न खाने दें।

आंव

पहले दो-तीन दिन तक पीला पानी दें। जब आंव निकल जाय, तब नीला पानी दें। रोगी को मट्ठा और बेल का सेवन करायें तथा छोटा उपवास करायें।

जलोदर

पीला तथा हरा पानी समभाग मिलाकर दें। स्थानीय पीली रोशनी का प्रयोग करें। रोगी को फलाहार करायें तथा जहां तक हो सके पानी न पीने दें या कम पीने दें।

आंतों की सूजन

हल्का नीला पानी पिलायें। नीले रंग की रोशनी डालें तथा नीले तेल की मालिश करायें। रोगी को मट्ठा एवं फलों का व्यवहार एक सप्ताह तक करायें। भोजन बन्द रखें।

जहरबाद

इसकी चिकित्सा चेचक की तरह करें। हल्का नीला पानी दो

भाग, गहरा नीला पानी एक भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर तीन-तीन घंटे के अन्तर से देना लाभकारी होता है।

दमा

नारंगी रंग का पानी दिन में चार बार दें। यदि गर्मी अधिक हो तो हल्का नीला पानी एक भाग तथा नारंगी पानी तीन भाग मिलाकर देना चाहिए। पन्द्रह दिनों तक रोगी को फलाहार करायें। फिर एक समय रोटी, सब्जी तथा दूसरे समय फलाहार पर रखें।

ब्रोकाइटिस

पीला पानी दिन में चार बार दें। रोगी को फलाहार पर एक सप्ताह तक रखें।

सूखी खांसी

गहरा नीला पानी दें। इसी पानी से कुल्ला करायें तथा रोगी को एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें।

तर खांसी

नारंगी अथवा पीला पानी दिन में चार बार दें। इसी से कुल्ला करायें।

तीव्र खांसी

गहरा नीला पानी दिन में चार बार दें एवं इसी पानी से गरारे भी करायें।

पुरानी खांसी

नारंगी पानी दिन में चार बार दें तथा इसी पानी से कुल्ला भी करायें।

कुकर खांसी

गहरा नीला पानी दिन में चार वार दें तथा गले पर इसी पानी में भीगी हुई कपड़े की पट्टी रखें।

गठिया

रोग नया हो तो नीला पानी दिन में चार वार दें, नीले रंग का प्रकाश रोगी-स्थान पर डालें और नीले तेल की मालिश करायें।

रोग पुराना हो तो पीला पानी दिन में चार बार दें। पीले रंग की रोशनी डालें तथा पीले पानी में पट्टी भिगोकर रोगी-स्थान पर वांधें और लाल तेल की मालिश करें।

प्रत्येक स्थिति में छोटा उपवास, फलाहार, दिन में ३-४ नीबुओं का सेवन तथा लौह प्रधान खाद्य लेना हितकर है।

साइटिका

पीला पानी दो भाग, लाल पानी एक भाग तथा गहरा नीला पानी १ भाग मिलाकर दिन में चार वार दें। दर्द वाले स्थान पर लाल पानी से गरम ठंडा सेंक करें। लाल रंग का कम्बल ओढ़कर प्रातः ९-१० वजे रोगी को धूप में वैठायें तथा फलाहार करायें।

नए रोग में भी केवल पीला पानी सेवन कराने से ही लाभ हो जाता है।

वात व्याधि

हर प्रकार के वात रोग में नारंगी पानी दिन में चार वार दें। रोग वढ़ा हुआ हो तो दवा ८ खुराक तक दी जा सकती है। दर्द वाले स्थान पर लाल तेल की मालिश करायें तथा लाल रोशनी डालें। रोगी को फलाहार पर रखने से शीघ्र लाभ होता है।

पक्षाघात (लकवा)

पीला पानी दो भाग, लाल पानी एक भाग तथा गहरा नीला पानी मिलाकर दिन में चार बार दें। रोगी को धूप में बैठाकर लाल तेल की मालिश करें। प्रतिदिन दो घंटे तक शरीर के प्रभावित भाग पर लाल रंग की रोशनी डालें। रोगी को फलाहार पर रखना लाभ-दायक है।

मृगी

नीला पानी दिन में छह बार दें। इसी पानी में कपड़े की पट्टी भिगोकर रखें तथा रोगी की बेहोशी की स्थिति में इसी पानी के छींटे मुंह पर मारें। बेहोशी की हालत में रोगी के सिर को ऊंचा करके पंखा झलना चाहिए।

नियमित रूप से रोगी के सिर पर नीली अथवा हरी रोशनी डालनी चाहिए तथा नीले अथवा हरे तेल की मालिश करनी चाहिए। इसके साथ ही नारंगी रंग का पानी दिन में ४ बार पिलाते रहना चाहिए। रोगी को सप्ताह फलाहार पर रखें। फिर एक समय साग-रोटी तथा दूसरी बार फलाहार पर रखें। नाक से पानी पीना, ढीले कपड़े पहनना तथा मन को प्रसन्न बनाये रखना शीघ्र लाभ करता है।

मूर्च्छा

गहरा नीला पानी दिन में चार बार दें तथा सिर पर नीली रोशनी डालें। सिर तथा हृदय पर नीले तेल की मालिश करें। एक सप्ताह तक रोगी को फलाहार पर रखें। फल तथा दूध का अधिक सेवन करायें। नाक से पानी पीना हितकर है।

मूर्च्छा आने के समय रोगी की नाक में नीला पानी डालना तथा सिर पर नीले पानी की पट्टी रखना और हल्की नीली रोशनी डालना हितकर होता है।

उन्माद

रोग का दौरा प्रारम्भ होने पर रोगी की गर्दन, सिर, तालु, हाथ-पांव की नाड़ियों, पांव की पिंडलियों तथा हथेलियों पर लाल पानी की पट्टी बांधने से दौरा तुरन्त ठीक हो जाता है।

रोग के बढ़ जाने पर रोगी को नीली दवा पिलानी चाहिए तथा रात के समय उसके ऊपर नीली रोशनी डालनी चाहिए। रोगी के रहने के कमरे में नीले रंग के पर्दे लगवा देने चाहिए, रोगी को फलाहार पर रखने से शीघ्र लाभ होता है।

अनिद्रा

नीला पानी दिन में चार वार दें। सोते समय पन्द्रह मिनट तक गुनगुने पानी में रोगी अपने पांव डाले रहे। संभव हो तो हल्की मालिश भी करायें और रोगी को तीन से सात दिन तक फलाहार पर रखें।

आधाशीशी

पीला और गहरा नीला पानी समभाग मिलाकर दें। हरे पानी से गरम-ठंडा सेंक करें तथा इसी पानी में भिगोई हुई कपड़े की आधा इंच मोटी पट्टी दर्द वाले स्थान पर रखें। आंखों में इसी पानी की तीन-चार बूंदें दिन में तीन-चार बार डालें तथा सिर पर नीले रंग की रोशनी भी दें। रोगी के पेट को साफ रखें। पन्द्रह दिन तक फलाहार पर फिर फल और दूध पर रखने से रोग जड़ से चला जाता है।

सिर दर्द

हरा पानी और हल्का पानी बराबर मिलाकर पिलायें तथा सिर पर इसी पानी की पट्टी रखें तथा नीली रोशनी डालें। रोगी को छोटा उपवास करायें तथा फल और दूध का सेवन करायें।

स्नायविक प्रदाह

नीला पानी दिन में चार दें। छोटा उपवास करायें। फल तथा दूध का सेवन करायें। हल्की मालिश भी कराने से शीघ्र लाभ होता है।

रक्तचाप

नीला पानी सेवन करायें। रोगी को एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें। फिर रोटी-सब्जी तथा फलों का सेवन करायें। सोते समय गुनगुने पानी में पन्द्रह मिनट तक दोनों पांवों को डाले रखना हितकर है।

रक्ताभाव

पीले पानी का सेवन करायें। एक सप्ताह तक रोगी को लौहयुक्त फलाहार पर रखें। फिर दूध का भी सेवन करायें।

प्लेग

हल्का नीला पानी हर घंटे पर दें। गांठों पर गहरे नीले रंग की रोशनी तथा सिर पर हल्के नीले रंग की रोशनी डालें। गांठ के फूट जाने पर हरे पानी से धोयें तथा उसी की पट्टी रखें। साथ ही उस पर हरे रंग की रोशनी डालें।

पेशाव कम होने पर हरे रंग का पानी दें मूत्राशय पर इसी रंग के पानी की पट्टी रखें।

जिस स्थान पर प्लेग का प्रकोप हो, वहां के सभी निवासियों को प्रतिदिन सोते समय एक औंस हल्का नीला पानी पीना चाहिए। इससे रोग से वचाव होता है।

तिल्ली और यकृत् की वृद्धि

पीला पानी पीने को दें एवं पीली रोशनी डालें। गरम ठंडा सेंक, छोटा उपवास प्रतिदिन दो-तीन नींबू लेना तथा दो सप्ताह तक फलाहार पर रहना शीघ्र लाभ करता है।

पथरी

गुर्दा, मूत्राशय अथवा पित्ताशय में पथरी होने पर पीला पानी सेवन करायें तथा पीली रोशनी दें। नीबू, सन्तरा आदि का सेवन करायें। दो सप्ताह तक फलाहार पर रहने से शीघ्र लाभ होता है।

गुर्दे का दर्द

गुर्दे में दर्द और सूजन होने पर नारंगी रंग का पानी दें तथा इसी रंग की रोशनी डालें। गरम तथा ठंडा सेंक और गीली पट्टी रखना, छोटा उपवास तथा दो सप्ताह तक फलाहार पर निर्भर रहना शीघ्र लाभ करता है। वाद में रोटी एवं फलों का सेवन करते रहना रहना चाहिए।

हिचकी

गहरा नीला पानी तीन भाग तथा लाल पानी एक भाग मिलाकर दें। पसलियों पर लाल पानी की मालिश करें। फल सब्जी का सेवन अधिक करायें।

गर्दन व कंधे का दर्द

गहरे नीले तेल की दिन में दो बार दस-दस मिनट तक मालिश करायें। छोटा उपवास तथा फल-दूध का सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

कमर, वस्ति, मूत्राशय का दर्द

पीला पानी दो भाग तथा नीला पानी एक भाग मिलाकर दें। पीठ तथा कमर पर एक-एक घंटे तक पीली रोशनी डालें। लाल तेल अथवा लाल पानी की मालिश करायें। एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें। फिर एक समय रोटी-साग तथा दूसरे समय फल दें।

नाभि के पास दर्द

हल्का नीला पानी दो भाग, गहरा नीला पानी एक भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर दें। नाभि के समीप हरे पानी की पट्टी रखें। छोटा उपवास तथा फलाहार करायें।

आमाशय में दर्द

गहरा नीला पानी दो भाग तथा नारंगी पानी एक भाग मिला कर दो-दो घंटे के अन्तर से दें। पेट पर नीली रोशनी डालें तथा लाल पानी या लाल तेल की मालिश करें। गरम-ठंडे सेंक, छोटे उपवास तथा फलाहार से शीघ्र लाभ होता है।

गुल्म रोग

नारंगी पानी दिन में चार बार दें। छोटा उपवास तथा फल-सब्जियों का सेवन करायें।

यदि ज्वर, प्यास, मुंह तथा शरीर पर लाली हो और जोर का शूल तथा पसीना हो, तो दो भाग हल्का नीला पानी तथा दो भाग पीला पानी मिलाकर दें।

यदि सुस्ती, जी मिचलाना, अरुचि आदि के लक्षण हों, तो दो भाग नारंगी पानी मिलाकर देना चाहिए।

मंदाग्नि

पीला पानी तीन भाग तथा नीला पानी एक भाग मिलाकर दें। यकृत् पर गरम ठंडा सेंक करें। फल, मट्ठा एवं सब्जी का सेवन अधिक करायें।

अपच

नारंगी पानी दिन में चार बार दें। एक सप्ताह तक फलाहार करायें। फिर मट्ठा और फल का सेवन कराते रहें।

पुराना कब्ज

नारंगी अथवा पीला पानी दिन में चार बार दें। पेट के निचले भाग पर नीले तेल की मालिश करायें। पेट की सफाई के लिए नाभि पर हरे तेल की मालिश करें। पेट पर गरम-ठंडा सेंक तथा गीली पट्टी रखना, एक सप्ताह तक केवल फलाहार। तत्पश्चात् रोटी-सब्जी एवं फलों का सेवन हितकर होता है।

तृषा रोग

तीन भाग हल्का नीला पानी तथा एक भाग गहरा नीला पानी मिलाकर दें। एक सप्ताह तक फलाहार करायें।

पेट का पुराना दर्द

नारंगी रंग का पानी दें। पेट पर गरम-ठंडा सेंक एक सप्ताह तक फलाहार, फिर एक समय रोटी-सब्जी तथा शेष समय में फलाहार शीघ्र लाभ करता है।

आमाशय का व्रण

हल्का नीला पानी दिन में चार बार दें। छोटा उपवास तथा फल दूध का सेवन शीघ्र लाभ करता है।

पेट फूलना

पीले रंग का पानी दिन में चार बार दें। एक सप्ताह तक फलाहार कराना शीघ्र लाभ करता है।

खट्टी डकारें

हल्के नीले रंग का पानी दिन में चार बार दें। फलाहार कराना हितकर है।

उबकाई

हल्के नीले रंग का पानी तीन भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में चार बार दें तथा फलाहार करायें।

डकारें आना

नारंगी रंग का पानी दिन में तीन बार दें तथा पेट पर गरम-ठंडा सेंक करें। फलाहार शीघ्र लाभ करता है।

अम्लपित्त

हल्का नीला पानी दो-दो घंटे के अन्तर पर दें। एक सप्ताह तक केवल फलाहार पर निर्भर रहने से शीघ्र लाभ होता है।

यकृत में जलन

नारंगी पानी दिन में चार वार दें। फलाहार पर निर्भर रहने से शीघ्र लाभ होगा ।

अरुचि

हृदय में शूल, शरीर का भारी होना तथा कब्ज की शिकायत हो, तो तीन भाग गहरा नीला पानी तथा एक भाग पीला पानी मिला कर दें।

शरीर में दाह तथा मुंह में सूजन हो, तो हल्का नीला पानी दिन में चार वार दें। फलाहार से शीघ्र लाभ होता है।

वायु न खुलना

रीढ़ पर हल्के नीले तेल तथा नाभि पर हरे तेल की मालिश करने से तुरन्त लाभ होता है।

भस्मक रोग

हल्का नीला पानी दिन में चार वार दें। रोटी-साग तथा फलों का सेवन करायें।

पेट के कीड़े

पीला पानी तीन भाग तथा हरा पानी एक भाग मिलाकर दें। रोगी की आयु के अनुसार प्रतिदिन दो से दस तक नीम की पत्तियां

खिलायें तथा नीम की पत्तियों के पानी का एनीमा दें। प्रतिदिन दो-तीन नीबू का सेवन करायें तथा एक सप्ताह तक फलाहार पर रखें तो शीघ्र लाभ होगा।

गलसुए (टांसिलों का बढ़ना)

नीला पानी दिन में चार बार दें। स्थानीय गरम-ठंडा सेंक, वाष्पस्नान तथा गले पर मिट्टी की पट्टी रखने से शीघ्र लाभ होता है। सात दिन तक नीला ऐनीमा देना भी हितकर है।

गला बैठना

गहरा नीला पानी दिन में छह बार दें। गले का गरम-ठंडा सेंक तथा फलाहार शीघ्र लाभ करता है।

तेज जुकाम

हरा पानी दिन में चार बार दें तथा सिर पर हरी रोशनी डालें। दो सप्ताह का फलाहार शीघ्र लाभ करता है।

पुराना जुकाम

पीला पानी दिन में चार बार दें। रोगी को नाक से पानी पिलाना तथा दो सप्ताह तक फलाहार पर रखना शीघ्र लाभ करता है।

मुंह के छाले

गहरा नीला तथा हरा पानी समभाग लेकर थोड़ा गुनगुना कर लें। फिर उससे दिन में तीन-चार बार कुल्ले करायें तथा पीने के लिए गहरा नीला पानी एवं हरा पानी समभाग मिलाकर दिन में चार बार दें।

मसूढ़ों की सूजन

गहरा नीला पानी गरम करके उसकी पट्टी तीन-चार वार मसूढ़ों पर रखें। ऊपर से गरम-ठंडा सेंक करें। रोगी को एक सप्ताह तक फलाहार कराने से शीघ्र लाभ होता है। इससे मसूढ़ों की सूजन तथा उनसे रक्त एवं मवाद का बहना ठीक हो जाता है।

दांत का दर्द

मसूढ़ों के फूलने के कारण दांत में दर्द हो तो पूर्वोक्त चिकित्सा करनी चाहिए। यदि मसूढ़े न फूले हों और दांत में दर्द हो, तो नारंगी पानी पीने के लिए दिन में चार बार देना चाहिए तथा उसी पानी से कुल्ले कराने चाहिएं।

दाँतों का हिलना

पीले, नीले तथा हरे पानी को समभाग लेकर गुनगुना करके दिन में तीन वार पीना चाहिए। गहरे नीले तथा हरे पानी से कुल्ले करने चाहिएं। इससे दांतों का हिलना, उनसे खून निकलना, सूजन तथा दर्द आदि विकार दूर होते हैं। फलाहार से शीघ्र लाभ होता है।

कान का दर्द

हल्के नीले पानी की पिचकारी देना तथा नीली रोशनी का प्रयोग लाभदायक है। कान का बहना भी इसी उपचार से ठीक हो जाता है।

कान के रोग

कान में आवाज होना, दर्द होना आदि रोगों को दूर करने के लिए पीले पानी तथा हरे पानी को समभाग मिलाकर दिन में तीन-

चार वार पीना चाहिए तथा इसी को गरम करके कान धोने चाहिएं। दाह होने पर नीले पानी को गुनगुना करके बाहर से सेंक करना चाहिए। ठंड के कारण दर्द हो, परन्तु कान बहता न हो तो पीले पानी से सेंक करना चाहिए तथा पीले तेल को गरम करके कान में डालना चाहिए।

नाक से खून गिरना

हल्के नीले पानी को प्रतिदिन नाक से पीने पर नाक से खून गिरना बन्द हो जाता है। भोजन में फल तथा सब्जियों का सेवन अधिक करना चाहिए।

नाक के रोग

पीला पानी दो भाग, गहरा नीला पानी एक भाग तथा हरा पानी एक भाग मिलाकर पीने, पीले तथा हरे पानी से नाक को धोनें, हरे पानी को नाक द्वारा खींचनें तथा नाक पर हरे कांच की रोशनी डालनें एवं हरे पानी की पट्टी रखने से अनेक प्रकार के नासिका-रोग—जैसे नाक से मल का बहना, नकसीर, पीनस, पपड़ी जमना, हड्डी का सड़ जाना आदि दूर होते हैं। चिकित्सा काल में फलाहार पर निर्भर रहने से शीघ्र लाभ होता है।

बहरापन

नीला पानी पीने, कानों पर पीली रोशनी डालनें, पांवों को गुनगुने पानी में डुबाने तथा कान का गरम-ठंडा सेंक करने से कानों की भनभनाहट, बहरापन आदि रोग दूर होते हैं। दो सप्ताह तक फलाहार पर रहने से शीघ्र लाभ होता है।

आँख दुखना

हल्के नीले रंग का प्रकाश आंखों पर डालना चाहिए। दाईं आंख में हल्के पीले पानी तथा बाईं आंख में हल्के नीली पानी की चार-चार बूंदें दिन में तीन-चार वार डालनी चाहिए।

दृष्टि मान्द्य

नीले पानी से आंखों पर छपके मारना तथा आंखों को धोना नीले तेल को आंखों के ऊपर वाहर की ओर लगाना तथा नीले घी को आंखों में लगाने से कम दिखाई देना तथा आंखों के अन्य रोग दूर होते हैं।

आँखों में जख्म

हल्का नीला पानी तीन भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में तीन-चार बार पिलावें। हरे पानी को गुनगुना करके आंखों का गरम-ठंडा सेंक करें तथा इसी पानी में पट्टी भिगोकर आंखों के ऊपर रखें। दिन में दो वार हल्के नीले पानी की चार-चार बूंदें आंखों में डालें। इससे आंखों के जख्म, जलन, दर्द, सामने की ओर की महीन फुंसियां, आंखों की गरमी, पानी वहना आदि नेत्र-रोग दूर हो जाते हैं।

त्वचा-रोग

त्वचा सम्बन्धी विभिन्न रोगों की चिकित्सा नीचे लिखे अनुसार करनी चाहिए---

घाव

हरा पानी दिन में चार बार पीना। हरे पानी की पट्टी वांधना

तथा हरे रंग की रोशनी डालना हर प्रकार के घावों पर लाभदायक है।

फोड़ा-फुंसी

पीला पानी दो भाग, गहरा नीला पानी एक भाग तथा हरा पानी एक भाग मिलाकर दिन में चार बार पिलायें। हरे पानी की पट्टी बांधें तथा रोगी स्थान पर पहले आधा घंटे तक लाल, फिर एक घंटे तक हरी रोशनी डालें।

फोड़ा पकता न हो और उसके मुंह न बना हो तो हल्का नीला पानी पीना, उसी की पट्टी रखना तथा उसी रंग की रोशनी डालना —इनका प्रयोग करना चाहिए।

फुन्सियों के लिए हरा पानो दिन में चार बार पीना तथा हरे रंग की रोशनी डालना उचित है।

खुजली

नीला पानी दिन में चार बार पीना, नीले तेल को खुजली वाले स्थान पर लगाना तथा नोले रंग का प्रकाश डालना चाहिए। नीले पानो को गुनगुना करके रोगी स्थान को दिन में दो बार धो देने से शीघ्र लाभ होता है।

भगन्दर

इसका इलाज फोड़े की तरह ही करना चाहिए तथा घाव पर हरा तेल लगाना और नोम की पत्तियों को भाप देनी चाहिए।

श्वेत कुष्ठ

पीला पानी पीने के लिए दिन में चार बार दें। हल्का नीला तेल रोगी स्थान पर मलें तथा नीली रोशनी डालें। चिकित्सा-काल

में नमक को बिल्कुल त्याग दें। छोटा उपवास करें तथा फल-सब्जी का सेवन अधिक करें।

दाद-छाजन-मुंहासे

हरा पानी दिन में चार बार पियें तथा रोगी स्थान पर यही लगायें और हरे कांच की रोशनी डालें। कब्ज भी हो तो एनीमा लें। चट्टे पड़ना, छाजन, फुंसी, मुंहासे, खाज आदि पर भी यही उपचार उपयोगी है। छाजन को प्रतिदिन नीम की उबाली हुई पत्तियों के पानी से धोना चाहिए।

गंज रोग

हरे पानी से गंज वाले स्थान को धोना, हरे तेल की मालिश करना, नीली रोशनी का प्रयोग तथा हरे पानी का सेवन—इनसे गंज रोग दूर होता है।

बालों का सफेद होना

गहरे नीले तेल की किस्में मालिश करने तथा फल-सब्जी का अधिक सेवन करने से सफेद बाल काले हो जाते हैं।

स्त्री-रोग

स्त्रियों के विभिन्न रोगों का उपचार नीचे-लिखे अनुसार करना चाहिए—

श्वेत प्रदर

पीले तथा गहरे नीले पानी को समभाग लेकर गुनगुना कर दिन में चार-छह बार दें। पीले पानी तथा हरे पानी का योनि-मार्ग में

डूश दें तथा मूत्राशय एवं मुंह पर गहरे नीले रंग के कांच का प्रकाश डालें। चिकित्सा-काल में केवल फलाहार पर रहने से शीघ्र लाभ होता है।

रक्त प्रदर

हल्का नीला पानी तीन भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में छह से आठ बार तक दें। प्रतिदिन हरे पानी का डूश दें तथा इसी पानी में फाहा तर करके योनि में रखें। साथ ही हरे रंग के कांच का प्रकाश डालें।

मासिक-धर्म का बन्द होना

पीला अथवा नारंगी पानी दिन में चार-छह बार पिलायें तथा पेट पर प्रतिदिन एक घंटे तक लाल रोशनी डालें।

मासिक-धर्म में कष्ट

पीला पानो पिलायें। औषध का सेवन अगला मासिक-धर्म प्रारंभ होने से कुछ दिन पूर्व ही आरंभ कर देना चाहिए। शेष सब उपचार मासिक-धर्म वन्द होने की भांति करें।

प्रसूति-ज्वर

नारंगी पानी दिन में चार-छह बार दें। फलाहार से शीघ्र लाभ होता है। ज्वर दूर हो जाने पर फल और दूध का सेवन कराना चाहिए।

गर्भावस्था के रोग

गर्भावस्थथा में जी मिचलाना, कै (वमन), छाती में भारीपन एवं कलेजे में जलन आदि विकारों को दूर करने के लिए हल्के नीले पानी को दिन में चार बार पिलायें। फलाहार विशेष लाभकारी है।

हिस्टीरिया

मासिक-धर्म की अधिकता से यह रोग हो तो नीला पानी दिन में चार-छह वार देना चाहिए और मासिक-धर्म की कमी से हो तो नारंगी पानी देना चाहिए। दोनों ही स्थितियों में सिर पर नीली रोशनी डालनी चाहिए। छोटा उपवास तथा फलाहार शीघ्र लाभ देता है।

गर्भ स्राव

हल्का नीला पानी एक-एक घंटे बाद दें। हरे पानी को गरम करके उसमें भिगोई हुई आधा इंच मोटी कपड़े की पट्टी तीन घंटे तक पेडू पर रखें। योनि में हरे पानी का फाहा रखें तथा हरी रोशनी गर्भाशय के मुंह पर डालें। गर्भपात की चिकित्सा भी यही है।

गर्भिणी का शूल

पीला पानी तीन भाग तथा गहरा नीला पानी एक भाग मिलाकर थोड़ा-सा गुनगुना करके एक-एक घंटे के अन्तर में आठ खुराकें दें। पीले पानी तथा हरे पानी से गरम-ठंडा सेंक करें। योनि से छिछड़े निकल रहे हों, तो तीन भाग हरे पानी एवं एक भाग पीले पानी का डूश दें। तीन दिन तक फलाहार पर रखें।

स्तनों में दर्द

हरे पानी में कपड़े की पट्टी भिगोकर स्तनों पर रखें और उसे बराबर तर बनाये रहें। पीने के लिये नीला पानी दें तथा दर्द वाले स्थान पर हरे रंग का प्रकाश डालें।

वमन और मिचली

हल्का नीला पानी चार से छह बार तक दें।

बाल रोग

बच्चों की बीमारियों की चिकित्सा नीचे लिखे अनुसार करनी चाहिए।

लार टपकना

पीने के लिये पीला पानी दें तथा मुंह पर प्रतिदिन एक घंटे तक गहरी नीली रोशनी डालें।

पतले दस्त

नीला पानी दिन में तीन-चार बार दें। एक दिन बच्चे को फलों के रस पर रखें। फिर फलों का रस तथा मट्ठा दें।

मुंह के छाले

नीले पानी से कुल्ला करायें तथा नीला पानी पीने को दें।

अधिक रोना

पीला तथा गहरा नीला पानी समभाग मिलाकर दें तथा मुंह पर गहरी नीली रोशनी एक से दो घंटे तक डालें।

आंख उठना

नीले पानी से आंखें धुलायें तथा यही पानी पीने को भी दें। फल-सब्जी अधिक सेवन करायें।

उदर-विकार

पेट फूलना, पेट बढ़ना, पेट से गुड़गुड़ाहट की आवाज आना, स्तन काटना, पीठ का कुबड़ा होना आदि विकारों पर नारंगी पानी की छह खुराकें दिनभर में दें तथा लाल पानी से पेट और पीठ

पर गरम-ठंडा सेंक करें। सम्पूर्ण शरीर पर पीले रंग की रोशनी डालें।

मल-मूत्र का एक साथ होना

बच्चे की गुदा एवं नाभि पर पीला तेल चुपड़ें तथा पीला पानी और हरा पानी समभाग मिलाकर पिलायें। पेट पर प्रतिदिन एक घंटे तक पीली रोशनी डालें।

मुंह से झाग आना

गरमी के कारण मुंह से झाग आने पर गहरा नीला तथा हरा पानी समभाग मिलाकर पिलायें तथा मुंह पर प्रतिदिन एक घंटे तक नीली रोशनी डालें।

अपच

बच्चे को नीला पानी पिलायें। बच्चे की मां को फल-दूध पर रखें। सब्जी अधिक और रोटी कम खाने को दें। इससे बच्चों के उफान तथा सड़ान के साथ होने वाले पतले दस्त ठीक हो जाते हैं।

सिर दर्द

हरा पानी पीने को दें तथा सिर पर प्रतिदिन आधा घंटा तक हरी रोशनी डालें। बच्चा अपनी आंखें बन्द करके सिसके तो उसके सिर में दर्द समझना चाहिये।

हृदय रोग

बच्चा जीभ तथा होंठ चबाये, मुट्ठी बांधकर हाथों को मोड़े तथा उसकी श्वांस चलने लगे तो हृदय-रोग समझना चाहिये। इसके लिये

पीनें को नारंगी पानी दें तथा बच्चे के मुंह और छाती पर गहरी नीली रोशनी डालें।

अंगूठा चूसना

बच्चे को पीने के लिये नीला पानी तथा दिन में तीन-चार बार एक-एक चम्मच संतरा अथवा किसी अन्य फल का रस दें। बच्चे की मां को फल तथा दूध का अधिक सेवन करायें।

बिस्तर पर पेशाब करना

बच्चा सोते समय बिस्तर पर पेशाब कर देता हो तो उसे हरा पानी पिलावें तथा पेट के नीचे एवं मूत्राशय पर नीली रोशनी डालें।

सूखा रोग

नीला पानी तीन भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर पिलायें। मुंह तथा छाती पर प्रतिदिन एक घंटा गहरी नीली रोशनी तथा आधा घंटा पीली रोशनी डालें। गहरे नीले पानी को गुनगुना करके सम्पूर्ण शरीर पर मलें। फिर जैतून के तेल की मालिश करके बच्चे को कुछ देर तक धूप में रहने दें तदुपरान्त पहले गरम और बाद में ठंडे पानी से स्नान कराकर शरीर को सुखा दें।

पाखाने के कीड़े

हरा पानी पिलायें तथा नीम की पत्तियों को उबाल कर एनीमा दें। बच्चा यदि दूध पीता हो तो मां को तीन-चार दिन तक फलाहार और दूध पर रखें। उसके बाद फल और मट्ठे का सेवन करायें।

दांत निकलते समय की तकलीफें

बच्चे को गहरा नीला पानी पिलायें। यही पानी उसकी मां को

भी दें। बच्चे के मुंह पर प्रतिदिन एक घंटे तक नीली रोशनी डालें तथा बच्चे की मां को दूध और फल पर एक सप्ताह तक रखें।

विविध रोग

अन्य रोगों की चिकित्सा नीचे लिखे अनुसार करनी चाहिये।

गृध्रसी रोग

दो भाग पीला, एक भाग लाल तथा एक भाग गहरा नीला पानी मिलाकर दिन में छह बार पिलायें। धूप में लाल तेल की मालिश करें तथा प्रतिदिन दो घंटे तक लाल रंग की रोशनी डालें।

बिवाई फटना

हरा पानी पिलायें तथा उसी का मालिश करायें। तीन दिन तक फलाहार तथा नंगे पांवों ओस पर चलने से शीघ्र लाभ होता है।

रक्त मूत्र

लाल रंग का पेशाब आने पर हरा पानी पिलाएं तथा इसी को गरम करके मसाने पर पट्टी रखें। जब पेशाब का रंग कुछ साफ हो जाये तब तीन भाग नीला तथा एक भाग पीला पानी मिलाकर पन्द्रह दिन तक पिलाते रहें। चिकित्साकाल में फलाहार तथा दूध का सेवन शीघ्र लाभ करता है।

पित्ती उठना

शरीर पर पित्तियां निकलने पर गहरा नीला पानी दो भाग तथा लाल पानी एक भाग मिलाकर दें। शरीर पर लालपानी की मालिश करवाकर रोगी को कम्बल उढ़ाकर दो घण्टे तक सुला दें।

गहरे नीले पानी से कुल्ला करायें तथा यही पानी पीने के लिए दिन में चार-छः बार दें।

जीभ के रोग

जीभ पर कांटे या दरारें पड़ गई हों तो हरा पानी तीन भाग तथा नीला पानी एक भाग गरम करके कुल्ले कराएं तथा पीला पानी तीन भाग तथा गहरा पीला (नारंगी) पानी एक भाग मिलाकर पीने को दें। मोटा उपवास तथा फलाहार करायें।

कौर निगलने में कष्ट

यदि जीभ पीली पड़ गई हो, उस पर लाल कांटे दिखाई दें या जलन हो तो हल्का नीला पानी दो भाग तथा गहरा नीला पानी एक भाग तथा पीला पानी एक भाग मिलाकर दिन में चार-छः बार पिलायें। साथ ही पानी से कुल्ले भी करायें।

तालु के रोग

तालु पर सूखी, नोंकदार स्राव युक्त अथवा कड़ी फुन्सियां हो गईं हों, तो गहरा नीला पानी तथा हरा पानी समभाग मिलाकर दिन में तीन-चार बार कुल्ली करायें। साथ ही गहरा नीला, पीला, हरा तथा हल्का नीला पानी एक-एक भाग मिलाकर दिन में चार-छः बार पीने को दें। छोटा उपवास तथा फलाहार करायें।

जहरीले जानवरों का काटना

जहरीले जानवरों के काटने पर नीचे लिखे उपचार करने चाहिएं—

लाल बर्रं (भिड़) का काटना

हरा पानी पिलाएं, हरा तेल लगायें तथा सूजन हो गई हो, तो

हरी रौशनी भी डालें। यदि केवल दर्द हो, सूजन न हो तो हल्का नीला पानी पिलाना तथा हल्के नीले तेल को काटे हुएं स्थान पर मालिश करनी चाहिए।

बर्र के काटे की सूजन

पीले वर्र के काटे की सूजन वाले स्थान पर गहरा नीला तेल लगाने से एक दिन में ही आराम हो जाता है।

बिच्छू का काटना

हल्का नीला पानी दिन में चार-छह वार पिलाएं तथा काटे हुए स्थान पर इसी रंग के तेल की मालिश करें एवं इसी रंग के कांच की रोशनी डालें। इससे तुरन्त लाभ होता है।

कुत्ते का काटना

यदि रोगी को ज्वर हो गया हो और जख्म पक गया हो, तो आसमानी रंग के पानी से उस स्थान को तर रखें। यदि जख्म में पीप पड़ जाये तो आसमानी रंग का तेल बांधें, साथ ही आसमानी रंग का पानी एक-एक घण्टे बाद पिलाना चाहिए।

चूहे का काटना

सूजन और वुखार होने पर आसमानी रंग का पानी पिलाएं। घाव को इसी रंग के पानी से तर रखें। यदि कै (वमन) होती हो तो आसमानी रंग के सात भाग पानी में एक भाग चूने का पानी मिलाकर पिलाने से आराम होता है।

गीदड़ का काटना

आसमानी रंग का पानी पिलायें तथा जख्म वाले स्थान पर दिन में दस वार आसमानी रंग का तेल लगाएं।

मोतिया बिन्द

फालसई (बैंगनी) रंग के तेलों को दो-दो बूंदें दिन में दो बार दो महीने तक डालते रहें। साथ ही बैंगनी रंग तथा गहरे नीले रंग के कांच की रोशनी भी डालें।

रोहे-कुकड़े

रोहे यदि पेट की खराबी से हों, तो हरा पानी पिलाना चाहिए तथा हरे तेल को आंख पर तथा गुरदों पर लगाना चाहिए।

कान में गिजाई या कनखजूरे का घुस जाना

कान में गिजाई या कनखजूरे के घुस जाने से उत्पन्न दर्द को दूर करने के लिए कान को लाल रंग के पानी से धो डालना चाहिए।

सूर्य-चिकित्सा सम्बन्धी अन्य बातें

सूर्य-रश्मियों द्वारा प्रभावित पानी, तेल आदि के विभिन्न रोगों पर प्रयोग के सम्बन्ध में पिछले प्रकरण में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। इस प्रकरण में हम सूर्य-चिकित्सा सम्बन्धी कुछ अन्य बातों का उल्लेख करेंगे।

धूप-स्नान

सूर्य की धूप में नंगे शरीर बैठने को धूप स्नान कहा जाता है। सूर्य की किरणें शरीर में विटामिन डी० को बढ़ाती हैं, जो हड्डियों की बनावट को सुदृढ़ करने का कार्य करता है। धूप-स्नान करने से शरीर स्वस्थ, पुष्ट एवं निरोग बनता है।

सूर्य से प्रकाश और गरमी दोनों ही निकलते हैं। प्रकाश में पोषक गुण होता है, जबकि गरमी से कमजोरी आती है। अतः धूप-स्नान दिन के ठण्डे समय ही करना चाहिए।

इसके लिए सबसे अच्छा समय शीत ऋतु में प्रातः ७ से १० बजे तक तथा ग्रीष्म ऋतु में ६ से ७ बजे तक का है।

धूप-स्नान की सबसे अच्छी विधि यह है—किसी स्वच्छ खुले तथा हवादार स्थान में लंगोट बांध कर बैठ जाएं। यदि पूर्ण नग्नावस्था में बैठा जा सके तो और भी अच्छा है। नदी, झरना, तालाब, समुद्र आदि के तट पर इस स्नान को लेना और भी अच्छा रहता है। इन स्थानों पर धूप-स्नान लेने से पूर्व पहले पानी में कूद कर तैरना तथा

बाद में पानी से बाहर निकल कर धूप-स्नान लेना अच्छा रहता है। ऐसा बार-बार करना चाहिए।
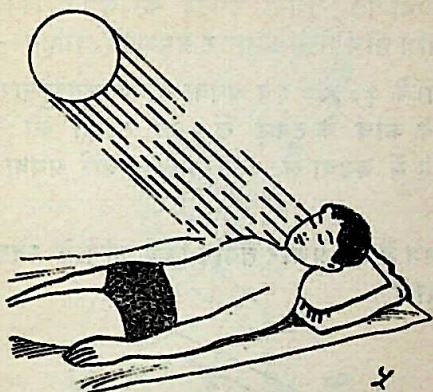
धूप लेते समय अपने सिर को छाया में रखना चाहिए अथवा उसके ऊपर पानी से भीगी हुई तौलिया रख लेना चाहिए। यदि धूप अधिक तेज न हो तो ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है।

पहले १० मिनट तक पीठ, फिर १० मिनट पेट पर धूप लेनी चाहिए। इस अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाकर २० मिनट या ३० मिनट तक ले जाया जा सकता है। शरीर का रुख बार-बार बदलते रहना चाहिए। गरमी के दिनों में १ घण्टे तक तथा सर्दी के दिनों में ३ घण्टे तक धूप-स्नान लिया जा सकता है।

धूप में बैठकर ही यदि सम्पूर्ण शरीर पर तेल की मालिश भी की जा सके तो वह अत्युत्तम है। मालिश के बाद भी यदि सहन हो सके तो आधे घण्टे तक धूप में बैठे रहें। तत्पश्चात् ठण्डे पानी से स्नान करना चाहिए।

रंगीन शीशों से रोशनी डालना

रोगों के उपचार प्रकरण में कई जगह रंगीन कांचों द्वारा शरीर के विभिन्न भागों पर रोशनी डालने का वर्णन किया गया है। इसकी सरल विधि नीचे लिखे अनुसार समझनी चाहिए—

इच्छित रंगों के १०×८ इंच अथवा आवश्यकतानुसार इससे कम-अधिक साइज के कांच के टुकड़े लें। इन टुकड़ों को चारों ओर से लकड़ी के फ्रेम में जड़वा लें, जैसे कि तस्वीरें अथवा प्लेटें जड़ी जाती हैं।

नीचे के चित्र में इस प्रकार तैयार किये कांच के स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है।
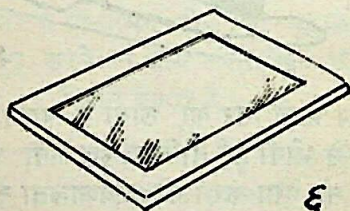
६

जब शीशे तैयार हो जाएं, तब रोगी व्यक्ति के शरीर के जिस भाग पर शीशों का प्रकाश डालना हो, उस भाग को बिल्कुल नंगा कर दें। फिर उसके ऊपर कुछ दूरी पर शीशे को हाथ से पकड़कर इस प्रकार खड़े हो जाएं कि उस कांच में से होकर गुजरने वाली सूर्य की किरणें सीधे रोगी के उसी अंग विशेष पर पड़ें।

यदि किसी समय धूप न हो और शीशे का प्रकाश डालना आवश्यक हो, तो ऐसी स्थिति में शीशे को किसी ऊंचे स्टूल, मेज आदि पर रखकर उसके पीछे सरसों के तेल का दीपक अथवा तेज रोशनी देने वाला बिजली का बल्व इस प्रकार लगा दें कि उसके

प्रकाश की किरणें उस रंगीन शीशे में से होकर रोगी व्यक्ति के शरीर के उसी भाग पर पड़ती रहें।

आजकल इस काम के लिये बाजार में विभिन्न रंगों के शीशे वाले विशेष प्रकार के बिजली के लैम्प भी आते हैं, उन्हें बड़ी आसानी से प्रयोग में लाया जा सकता है।

रंगीन वायु को पीना

विभिन्न रंगों की बोतलों को काग लगाकर ५-६ घण्टे तक धूप में रख दें। इस बीच उनमें जो गरम हवा भरेगी, उसमें भी रंगीन पानी जैसे गुण आ जायेंगे।

इस हवा को पीने की विधि यह है कि जिस रंग की हवा पीनी हो, उस रंग की बोतल को एक हाथ में लेकर, दूसरे हाथ से उसके काग को खोलें तथा बोतल के मुंह को तुरन्त ही नाक के छिद्र से लगाकर गहरी सांस खींचें। सांस खींचने के बाद बोतल के काग को तुरन्त बन्द कर दें। फिर नाक के दूसरे छिद्र से सांस को धीरे-

धीरे बाहर निकाल दें। इसी विधि से प्रत्येक बोतल की वायु को तीन-तीन बार खींचना चाहिए।

पीले रंग की बोतल की वायु को केवल तभी खींचना चाहिए, जब नाक का दायां स्वर चल रहा हो। यही बात लाल रंग के सम्बन्ध में भी है। शेष रंगों वाली बोतलों की वायु को किसी भी स्वर के चलते समय खींचा जा सकता है। वायु हमेशा नाक के उसी छिद्र से खींचनी चाहिए, जो उस समय चल रहा हो।

जिस रोग के लिए जिस रंग का पानी उपयोगी कहा गया है, उस रोग के लिए उसी रंग की बोतल की वायु का पीना भी लाभदायक होता है।

रंगीन घी का प्रयोग

रंगीन घी तैयार करने की विधि का वर्णन पहले किया जा चुका है। घी के प्रयोग के सम्बन्ध में इस प्रकार समझना चाहिए—

(१) दाईं आंख में रोहे हों तो रात को सोते समय हल्के नारंगी रंग की बोतल का घी और यदि बाईं आंख में हो तो हल्के नीले रंग की बोतल का घी सलाई से लगाकर सो जाना चाहिए। यदि दोनों आंखों में रोहे हों तो दाईं आंख में हल्के नारंगी रंग की बोतल का तथा बाईं आंख में हल्के नीले रंग की बोतल का घी लगाना चाहिए।

इस घी के प्रयोग से आंखों की खुजली, जलन, लाली और रोग भी दूर होते हैं।

(२) नीले रंग की बोतल का घी मुंह के छालों पर लगाने से लाभ होता है। सिर पर मालिश करने से मस्तिष्क की ताकत बढ़ती है तथा रीढ़ पर मालिश करने से स्नायुओं की शक्ति में वृद्धि होती है।

रंगीन तेल का प्रयोग

(१) नीले रंग की बोतल के तेल को सिर में मालिश की जाय तो केश एवं मस्तिष्क की शक्ति में वृद्धि होती है। बाल काले, लम्बे तथा मुलायम होते हैं। सिर ठण्डा बना रहता है। इस तेल के प्रयोग से आंखों की जलन, हाथ-पांवों की जलन तथा मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक रोग थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं।

इस तेल को हृदय पर मला जाए तो हृदय को शक्ति मिलती है। प्रमेह रोग दूर होता है, ज्वर की वृद्धि रुकती है। सांस फूलना, भ्रम, दुःस्वप्न दिखाई देना आदि दोष दूर होते हैं।

सिर पर मालिश करने से गरमी के कारण उत्पन्न सिर दर्द, आधा शीसी, जुकाम के कारण आंखों से पानी आदि विकार दूर होते हैं।

पेट पर मालिश करने से आंतों की सूजन तथा पेचिश को लाभ होता है।

नाभि के नीचे पेडू पर मालिश करने से मूत्राशय की सूजन, गर्भ-स्राव, मासिकधर्म की खराबी तथा हिस्टीरिया आदि दोष दूर होते हैं।

गठिया के दर्द, बवासीर के मस्से, छिले-कटे, खुजली, दाद, छाजन प्लेग की गिल्टी, सूजन तथा बर्र-ततैया आदि के काटे हुए स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

(२) हरे रंग की बोतल का तेल मस्तिष्क को शक्ति शाली बनाता है। यह मुंहासे, नासूर, छाजन, दाद, घाव आदि को ठीक करता है। प्रदर, प्रमेह तथा स्वप्नदोष के रोगी इस तेल को सिर के पिछले भाग में सोते समय प्रतिदिन मालिश करें तो ये रोग जल्द ही दूर हो जाते हैं।

जुकाम, मोतिया विन्द, कान का दर्द, कान का बहना, कम सुनाई देना, फोड़ा-फुन्सी, घुटने का दर्द आदि रोग भी इसके प्रयोग से दूर होते हैं।

(३) लाल रंग की बोतल का तेल गठिया, नपुंसकता, कान का दर्द, पुरानी गठिया, विना फूटा हुआ फोड़ा, पक्षाघात, कोढ़ के दर्द तथा कमर के निचले भाग में होने वाले दर्द को दूर करता है। चोट के दर्द, सर्दी अथवा पुरानी चोट के दर्द भी इसकी मालिश से दूर होते हैं।

(४) हल्के नीले रंग के बोतल का तेल बहुत ठण्डा होता है। यह सूजन, गठिया की सूजन, गरमी के कारण होने वाली दिल की धड़कन, हर प्रकार के ज्वर, सिर दर्द, पेचिश, मरोड़, गर्भाशय में सूजन, मासिक धर्म में खून अधिक आना, बिच्छू, मच्छर, शहद की मक्खी या बर्र के काटे हुए स्थान, छिलना, वादी, बवासीर के मस्से, दाद, प्लेग की गिल्टी, आधाशीसी जलना आदि पर लगाने से लाभ पहुंचाता है।

(५) नारंगी रंग की बोतल का तेल गुर्दों पर लगाने से पथरी रेत-कण जैसी बनकर निकल जाता है। गरमी के जख्म,सन्निपात, पेट दर्द आदि पर मालिश करने से लाभ होता है।

कपड़ों द्वारा रंगों का प्रभाव

शरीर पर जो कपड़े पहने जाते हैं, वे भी अपने रंगों द्वारा शरीर पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव डालते हैं। अतः शरीर पर वस्त्र पहनने में निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिए—

गरमी के दिनों में काला कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। यह रंग सूर्य की किरणों के गुण को सोख लेता है। सफेद कपड़ा पहनना चाहिए।

जाड़े के दिनों में रजाई आदि ओढ़ने-बिछाने के कपड़े लाल रंग के या लाल रंग के अस्तर वाले होने चाहियें। यह रंग गरमी देता है।

शीत-ज्वर की तीव्रता एवं रक्त की कमी होने पर भी लाल रंग के अस्तर वाले कपड़े पहनने चाहिए।

हृदय में धड़कन, पेट में गरमी तथा दुर्बलता भी अधिक हो तो हृदय स्थान पर हल्के नीले रंग के अस्तर वाले कपड़े को लगाना चाहिए।

चिड़चिड़ाहट तथा उत्तेजना की अवस्था में जब शक्ति क्षीण होती जा रही हो, तब बैंगनी रंग के वस्त्र पहनने से शक्ति बनी रहती है।

फेफड़ों की शिथिलता एवं रक्त के दूषित होने पर लाल एवं नारंगी रंग का कपड़ा सीने पर तथा नीले रंग के कपड़े का पैबन्द हृदय पर रखना लाभदायक होता है।

पित्ती उछलना, मुंहासे आदि रोगों में कड़ी त्वचा वाले लोगों को हल्के नीले रंग के अस्तर वाले कपड़े पहनने चाहियें।

शीत ऋतु में पांवों में लाल रंग के मोजे तथा शरीर पर लाल रंग का कोट पहनना अच्छा रहता है।

ग्रीष्म ऋतु में सफेद या हल्के आसमानी या हरे रंग की टोपी सिर पर पहननी चाहिए। तेज धूप के समय पहने जाने वाले हैट के भीतर नीले रंग का अस्तर शान्तिदायक एवं लाभप्रद रहता है।

सफेद बोतल का तेल

रंगीन बोतलों द्वारा निर्मित पानी, घी, तेल आदि के गुणों का पर्याप्त वर्णन किया जा चुका है। अब अन्त में सफेद बोतल में तैयार

किये गए तेल के गुणों पर भी प्रकाश डाला जाता है। जिस प्रकार रंगीन बोतलों में तेल तैयार किये जाते हैं, उसी प्रकार सफेद कांच की बोतल में भी तेल भरकर तथा उसे धूप में रखकर तैयार कर लेना चाहिए।

सफेद बोतल में तैयार किये गए तेल के गुण निम्नलिखित हैं—

यदि अन्य रंग की बोतलों में तैयार किये गए तेल के साथ सफेद बोतल के तेल को भी मिला दिया जाय तो उसकी तासीर चौगुनी बढ़ जाती है।

इसी प्रकार सफेद रंग की बोतल में तैयार किये गए पानी अथवा मिश्री को भी दूसरे रंग की बोतलों में तैयार किये गए पानी अथवा मिश्री को मिला दिया जाय, तो उनके गुणों में भी वृद्धि हो जाती है।

सफेद बोतल के तेल को यदि बढ़ी हुई तिल्ली पर मला जाये तो वह कम हो जाती है तथा शरीर में गरमी भी बढ़ जाती है।

●

उपसंहार

सूर्य-किरणों द्वारा रंगीन बोतलों की सहायता से पानी, शक्कर, गोली, तेल तथा घी तैयार करने की विधियों, रंगीन शीशों द्वारा रोशनी डालना तथा रोगानुसार उपचार के सम्बन्ध में इस पुस्तक के पिछले पृष्ठों में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

पाठकगण इस पुस्तक को पढ़कर समझ गये होंगे कि यह चिकित्सा प्रणाली कितनी सरल निरापद तथा कम खर्चीली है। यथार्थ में सूर्य-किरण-चिकित्सा भी प्राकृतिक चिकित्सा का ही एक अंग है। इस चिकित्सा पद्धति द्वारा शहर और गांव के अमीर और गरीब सभी स्त्री-पुरुष घर बैठे ही पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं। अतः हम रोगोपचार पद्धति का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार कर रोगोन्मूलन तथा स्वास्थ्य-रक्षा की दिशा में सभी लोगों को प्रयत्नशील होना चाहिए।

१२४७१ टेक्निकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित

हमारी चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें

१. देहाती अनुभूत योग संग्रह स. दो भाग—अमोलचन्द्र शुक्ला १२.००
२. देहाती जड़ी बूटियां—अमोलचन्द्र शुक्ला १२.००
३. संन्यासी चिकित्सा शास्त्र—अमोलचन्द्र शुक्ला ६.००
४. देहाती प्राकृतिक चिकित्सा—अमोलचन्द्र शुक्ला ६.००
५. घर का वैद्य सम्पूर्ण—अमोलचन्द्र शुक्ला १२.००
६. देहाती एकौषधि चिकित्सा—अमोलचन्द्र शुक्ला ४.५०
७. फलों द्वारा चिकित्सा—अमोलचन्द्र शुक्ला ४.५०
८. पैसे पैसे के वैद्यक चुटकले—अमोलचन्द्र शुक्ला ४.५०
९. वैद्य राज—पं० रामनारायण वैद्य ४.५०
१०. वैद्य रानी (लेडी डाक्टर)—पं० रामनारायण वैद्य ... ४.५०
११. आंखों का डाक्टर—पं० रामनारायण वैद्य २.५०
१२. दांतों की चिकित्सा—पं० रामनारायण वैद्य १.५०
१३. मरहम बनाना—पं० रामनारायण वैद्य १.५०
१४. बाल रोग चिकित्सा—पं० ऋषि कुमार शास्त्री १.५०
१५. स्त्री रोग चिकित्सा—पं० ऋषि कुमार शास्त्री १.५०
१६. पुरुष गुप्तरोग चिकित्सा—पं० ऋषि कुमार शास्त्री ... ३.००
१७. स्वप्न दोष चिकित्सा—पं० ऋषि कुमार शास्त्री १.५०
१८. बृहद् बूटी प्रचार—पं० ऋषि कुमार शास्त्री ६.००
१९. घर का वैद्य—पं० ऋषि कुमार जी १.५०
२०. आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति—महात्मावाराम ४.५०
२१. रस तरंगिणी भाषा—श्रीविद्या धर शास्त्री............ ८.००
२२. सरल चिकित्सा अरुणोदय—रघुवीर शरण बंसल ४.५०
२३. प्राकृतिक चिकित्सा सार—के० प्रसाद ८.२५
२४. मिडवाईफरी (दाईगिरी शिक्षा)—वसन्त रानी ४.५०
२५. नाड़ी ज्ञान तरंगिनी—रघुनाथ प्रसाद ४.५०
२६. आधुनिक एलोपैथिक गाइड—डा० हरनारायण कोकचा १८.००
२७. अपटुडेट एलोपैथिक इन्जेक्शन बुक—डा० कोकचा ८.२५
२८. कुशल कम्पाऊण्डर—डा० हरनारायण कोकचा ५.००
२९. टेबलेट्स गाइड—डा० हरनारायण कोकचा ८.२५
३०. हमारी आंखें—डा० अग्रवाल ८.२५

तीन अमूल्य पुस्तकें वी० पी० द्वारा मंगाइये
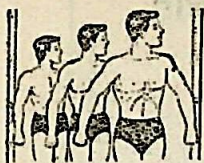
कद कैसे बढ़ायें—लेखक—राजेश दीक्षित—मुख तथा शरीर का समस्त सौन्दर्य फीका जान पड़ता है यदि कद छोटा हो। व्यक्तित्व के निखार एवं आकर्षण के हेतू कद बढ़ाने वाले व्यायाम तथा अन्य उपायों का इस पुस्तक में विस्तृत एवं सचित्र वर्णन किया गया है। अपने शारीरिक कद को लम्बा करने के इच्छुक प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। पुस्तक में वर्णित उपायों द्वारा आप अपने तथा अपनी सन्तान के शारीरिक कद में वृद्धि कर सकते हैं। पृष्ठ १००, चित्र ६६, Price Rs. 4/50 पोस्टेज सहित।

मोटापा कैसे दूर करें—लेखक—राजेश दीक्षित—मोटापे से परेशान स्त्री-पुरुषों के लिए एक अत्यन्त उपयोगी सचित्र पुस्तक, जिसमें मोटापा उत्पन्न होने के कारण, मोटापा कम करने वाले व्यायाम, भोजन तथा अन्य उपायों के साथ ऐसी अनेक सरल विधियां दी गई हैं, जिनका प्रयोग करके सहज में ही मोटापे से छुटकारा पाया जा सकता है। पुस्तक में दिये गए अध्यायों का वर्णन :

१. मोटापा और उसके कारण २. मोटापे की हानियां ३. मोटापा कम करने के उपाय ४. मोटापा और औषध प्रयोग, ५. दैनिक कार्यक्रम, ६. स्त्रियों के लिए उपयोगी व्यायाम ७. पुरुषों के लिए उपयोगी व्यायाम ८. दोबारा मोटापा रोकने के व्यायाम, 9. अवस्था के अनुसार शारीरिक वजन इत्यादि। पृष्ठ संख्या १०८, चित्र ६६, Price Rs. 4/50 पोस्टेज सहित।

स्वमूत्र चिकित्सा—लेखक—राजेश दीक्षित—मनुष्य का अपना ही मूत्र (पेशाब) शरीर के प्रायः सभी कठिन से कठिन रोगों को भी नष्ट कर देने की शक्ति रखता है। मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण कर, मूत्र-प्रयोगों के अनुभवी विद्वानों के मत पर आधारित एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक, जिसे पढ़कर आप आश्चर्य चकित होने के साथ ही लाभान्वित भी होंगे। Price Rs. 3/-पोस्टेज सहित।

देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

गुण सीरीज पर नये प्रकाशन

१. सोंठ (अदरक) के गुण तथा उपयोग २)
२. मिट्टी के गुण तथा उपयोग २)
३. पानी के गुण तथा उपयोग ३)
४. हरड़ के गुण तथा उपयोग २)
५. बहेड़ा के गुण तथा उपयोग २)
६. जीरा के गुण तथा उपयोग २)
७. आंवला के गुण तथा उपयोग ३)
८. अजवायन के गुण तथा उपयोग ३)
९. पालक, बथुआ, चौनाई के गुण तथा उपयोग ३)
१०. करेला के गुण तथा उपयोग ३)
११. पपीता के गुण तथा उपयोग ३)
१२. टमाटर पोदीना के गुण तथा उपयोग ३)
१३. तोरई के गुण तथा उपयोग ३)
१४. गिलोय के गुण तथा उपयोग ३)
१५. थूहर के गुण तथा उपयोग ३)
१६. चन्दन के गुण तथा उपयोग ३)
१७. केशर के गुण तथा उपयोग ३)
१८. अशोक के गुण तथा उपयोग ३)
१९. केला के गुण तथा उपयोग ३)
२०. जामुन के गुण तधा उपयोग ३)
२१. अंजीर के गुण तथा उपयोग ३)
२२. पान के गुण तथा उपयोग ३)

देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली

प्राकृतिक चिकित्सा की देन

[सातवां खण्ड]

पानी के गुण तथा उपयोग
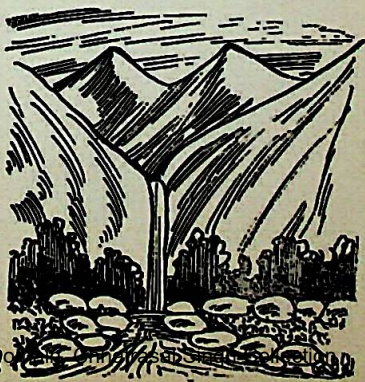
अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विद्यापीठ लखनऊ द्वारा स्वीकृत साहित्य पर एक नई पुस्तक

पानी के गुण तथा उपयोग

[पानी के गुण, उपयोग, किस्म तथा पानी के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों की चिकित्सा-सम्बन्धी विधियों का सचित्र विवरण]

लेखक
राजेश दीक्षित

देहाती पुस्तक भण्डार दिल्ली-६

चेतावनी

भारतीय कापीराइट ऐक्ट के अधीन इस पुस्तक का कापीराइट भारत सरकार के कापीराइट आफिस द्वारा हो चुका है। अतः कोई सज्जन इस पुस्तक का नाम, अन्दर का मैटर, डिजाइन, चित्र, सैटिंग या किसी भी अंश को भारत की किसी भी भाषा में नकल या तोड़-मरोड़ कर छापने का साहस न करें; अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मदार होंगे।

—प्रकाशक

सावधान

आवश्यक सूचना

इस पुस्तक में संग्रहीत नुस्खे व विधियां लेखक व सम्पादक ने काफी सावधानी से लिखे हैं; फिर भी प्रेस, प्रूफरीडर की गलती अथवा व्यक्ति, देशकाल तथा जलवायु की प्रतिकूलता के कारण कोई नुस्खा हानिकारक भी हो सकता है। पाठकों को चाहिए कि पुस्तक में लिखा कोई भी कार्य करने से पहले किसी क्वालीफाइड वैद्य, हकीम, डाक्टर व चिकित्सक से मशवरा अवश्य ले लें, क्योंकि किसी नुस्खे के हानिकारक होने की दशा में लेखक, सम्पादक, पब्लिशर या प्रेस कतई जिम्मेदार नहीं होंगे।

—प्रकाशक

मूल्य

भारत में : तीन रुपया
विदेश में : छह शिलिंग

प्रकाशक
देहाती पुस्तक भण्डार
चावड़ी बाजार दिल्ली-६

मुद्रक
टक्नीकल प्रिंटिंग प्रेस,
सोनीपत (निकट दिल्ली)

दो शब्द

जल को 'जीवन' कहा गया है। भोजन के बिना प्राणी कुछ अधिक समय तक जीवित रह सकता है, परन्तु पानी के बिना ज़ीना असंभव है। जिन पंचतत्वों से मनुष्य-शरीर का निर्माण हुआ है, मिट्टी के बाद पानी का उसमें दूसरा स्थान है। रक्त के रूप में यह तत्व हमारे शरीर में प्रतिक्षण दौड़ा करता है। रक्त के बिना मनुष्य एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता।

पानी अनेक प्रकार का होता है—(१) वर्षा का जल (२) झरनों का जल, (३) नदियों का जल, (४) तालाबों का जल, (५) कुएं और बावड़ियों का जल तथा (६) समुद्र का जल आदि। विभिन्न प्रकार के जल की तासीर अलग-अलग होती है। गरम और ठण्डे पानी के गुण भी अलग-अलग हैं।

प्राकृतिक-चिकित्सा के आदि-आचार्य जर्मनी निवासी महात्मा लुईकुने ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रतिपादित किया था कि औषध-चिकित्सा की अपेक्षा प्राकृतिक-चिकित्सा मानव-समाज के लिए कहीं अधिक उपयोगी, हानि-रहित, निर्दोष तथा स्वल्प-व्यय-साध्य है औषध-चिकित्सा रोगों को दबाने का कार्य करती है, जिसके फलस्वरूप कालान्तर में अन्य प्रकार की व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं, परन्तु प्राकृतिक-चिकित्सा रोगों को जड़ से मिटा देती है और शरीर को भीतर तथा बाहर से एकदम स्वच्छ, स्वस्थ तथा रोग-रहित बना देती है।

महात्मा लुई कुने द्वारा आविष्कृत प्राकृतिक-चिकित्सा

पद्धति में जल और मिट्टी का मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है और केवल इन्हीं के द्वारा सभी रोगों को निर्मूल कर दिया जाता है। महात्मा लुई कुने की चिकित्सा-पद्धति को और अधिक विकसित करने का श्रेय सुप्रसिद्ध प्राकृतिक-चिकित्सक डा० ए० जूस्ट, डा० नीप तथा डा० लिण्ड-लेथर आदि को है। इन सभी महानुभावों ने जल-स्नान की विभिन्न विधियों का आविष्कार किया है, जिनके रोग-नाशक चमत्कारिक प्रभाव को देखकर दांतों तले उंगली दबा लेनी पड़ती है।

प्रस्तुत पुस्तक में उक्त सुप्रसिद्ध प्राकृतिक-चिकित्सकों द्वारा आविष्कृत जल-स्नान की विभिन्न विधियों तथा जल-चिकित्सा द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार सम्बन्धी उपायों का सचित्र वर्णन किया गया है। विषय-वस्तु को सरल बनाने के उद्देश्य से भाषा की क्लिष्टता सम्बन्धी दोष को दूर कर दिया गया है तथा अनेक चित्रों द्वारा हर बात को भली-भांति समझा देने का प्रयत्न किया गया है। जल-चिकित्सा की विधियों के अतिरिक्त प्रारंभ में पानी के नाम, विभिन्न प्रकार के पानी और उनके गुणों में अन्तर तथा पानी से सम्बन्धित अन्य आवश्यक जानकारियों का भी वर्णन करके पुस्तक को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने की चेष्टा की गई है।

आशा है, पाठकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। जिन ग्रंथों तथा अन्य सूत्रों द्वारा प्रस्तुत पुस्तक के लिए सामग्री-चयन में सहायता प्राप्त हुई है, उन सभी के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

—राजेश दीक्षित

समर्पण

आगरा निवासी सुप्रसिद्ध विधि-वेत्ता एवं वकील

अपने परम आत्मीय

बा० महेश प्रसाद माथुर, एडवोकेट

श्री मुरारीलाल श्रीवास्तव, एडवोकेट

एवं

मुन्शी माशअल्ला खां

को

सस्नेह

"आपो हिष्टामयो भुवः । तान ऊर्जे दधातन ।
महेरणायचक्षसे ।"

—ऋग्वेद १०।९।१

भावार्थ—हे जल ! तुम्हीं हम लोगों के स्वास्थ्य के हेतु हो, अतः हमें ऐसा स्वास्थ्य एवं शक्ति प्रदान करो, जिसके द्वारा हम लोग सत्य के सुगम मार्ग को प्राप्त कर सकें।

× × ×

"अप्स्वन्तरमृतं अप्सु भेषजम् ।
अपामृत प्रशस्तये ।"

—ऋग्वेद १।२३।१९

जल में अमर बना देने की शक्ति है। जल में रोग को छुड़ा देने का गुण है।

× × ×

"छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंचरचित यह अधम शरीरा ॥"

—संत तुलसीदास (रामचरित मानस)

यह अधम शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु—इन पंच तत्वों से निर्मित है।

विषय-सूची

पानी
के
गुण तथा उपयोग

"आप इद्वा उभेषजोरायो अभीव चातकीः ।
आपस् सर्वस्य भपेजोस्तास्तु कृण्वन्तु भेषजम् ॥"
—ऋग्वेद ६०।१३७।६

भावार्थ—जल ही औषध है। जल रोगों का नाश करता है। यह सभी रोगों को दूर कर देता है, अतः यह तुम्हारे रोग को भी दूर करे।

× × ×

"अपो इद्वा भेषजोरायो अभीव चातनीः ।
आपस सर्वस्य भेषजोस्तास्ते मुञ्जन्तु सौत्रयः ॥"
अथर्ववेद ३।७।५

भावार्थ—जल ही औषध है। जल रोगों का नाश करता है। जल सब रोगों को दूर करता है। यह जल तुम्हें भी कठिन रोग के पंजे से छुड़ा दे।

× × ×

"अप्सुमे सोमोऽब्रवीत् अन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशं भुवम् ॥"
—ऋग्वेद १३।६।६३

भावार्थ—जल में सभी रोगों को दूर कर देने की शक्ति है और अग्नि में अनन्त उपकार भरे हैं—ऐसा ही सोम ने भी कहा है।

सामान्य-परिचय

चिकित्सा-शास्त्र के आदि प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि तथा आयुर्वेद के अन्य आचार्यों के मतानुसार पानी के गुण-धर्म निम्नानुसार हैं—

पानी अन्तरिक्ष से आया है। सृष्टि से पूर्व जब कहीं कुछ न था, तब महाशून्याकाश में सर्वप्रथम जल का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दुओं के पुराणों तथा मुसलमानों का कुरान एवं ईसाई धर्म ग्रंथ बाइबिल के अनुसार जल वह तत्त्व है, जो सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होता है तथा प्रलय के उपरान्त भी यही स्थिर रहता है।

सृष्टि के पालनकर्त्ता भगवान् विष्णु का निवास जल में माना गया है। उन्हीं भगवान् विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा सृष्टि का निर्माण कार्य करते हैं, अतः इससे सिद्ध है कि महाशून्याकाश एक नित्य तत्त्व है और उसके बाद का मुख्य तत्त्व जल है। जल के बाद ही पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति होती है। प्रकारान्तर से यह सम्पूर्ण सृष्टि जल से ही उत्पन्न हुई है।

जल को अनिर्देश्य-रस अर्थात् अप्रकट रस वाला कहा गया है। यह रोगी तथा स्वस्थ—दोनों प्रकार के प्राणियों के लिए हितकर है।

अन्तरिक्ष जल के प्रकार

अन्तरिक्ष से गिरा हुआ जल चार प्रकार का होता है—

(१) धार (अर्थात् मूसलाधार वर्षा के रूप में गिरा हुआ जल)।

(२) कार (अर्थात् वर्षा में गिरे हुए ओलों का जल)।

(३) तुषार (अर्थात् ओस का जल)।

(४) हेम (अर्थात् पर्वतों आदि पर गिरी हुई बर्फ का जल)।

[वर्षा का जल]

उक्त चारों प्रकार के जलों में 'धार' अर्थात् मूसलाधार वर्षा के रूप में गिरा हुआ जल सबसे अच्छा है, क्योंकि यह हल्का होता है।

हल्का जल अर्थात् मूसलाधार जल भी दो प्रकार का होता है—

(१) गंगाजल के समान।

(२) समुद्र-जल के समान।

आश्विन (क्वार) के महीने में जो पानी बरसता है, वह गंगाजल के समान होता है। वर्षा ऋतु के प्रारम्भिक दिनों में बरसने वाला जल समुद्र-जल के समान होता है।

वर्षा-जल की पहचान

वर्षा का पानी गंगाजल के समान है अथवा समुद्र-जल के समान—इसकी परीक्षा के लिए निम्नलिखित उपाय काम में लाना चाहिए—

जिस समय पानी बरस रहा हो, उस समय पके हुए चावलों (भात) का एक पिण्ड (गोला) बनाकर किसी चांदी के बर्तन में रखें। फिर उस बर्तन को किसी खुले हुए स्थान में बरसते हुए पानी में रख दें। एक मुहूर्त भर रखा रहने के बाद भी यदि चावलों का गोला वैसा ही बना रहे तो यह समझना चाहिए कि गंगाजल बरस रहा है। इसके विपरीत यदि गोला (चावलों का पिण्ड) अपना रंग बदल दे और गंदा-सा दिखाई दे तो यह समझना चाहिए कि समुद्र-जल बरस रहा है।

बरसात का समुद्र-जल उपयोग में लाने योग्य नहीं होता।

आचार्यों का कहना है कि यदि समुद्र-जल को आश्विन (क्वार) मास में ग्रहण किया जाय तो वह भी गंगाजल के समान ही लाभकारी होता है, परन्तु गंगाजल प्रत्येक स्थिति में प्रधान होता है। अतः जल का संग्रह आश्विन (क्वार) मास में ही कर लेना चाहिए।

वर्षा-जल का संग्रह करना

घर की छत के ऊपर सोने, चांदी, मिट्टी अथवा अन्य धातुओं के पात्रों को श्वेत रंग के स्वच्छ तथा महीन कपड़े से ढककर रख दे। उन पात्रों में आश्विन (क्वार) मास की वर्षा का जो जल इकट्ठा हो; उसी का सदैव सेवन करना चाहिए।

[वर्षा के जल का संग्रह करना]

यदि उक्त प्रकार का जल प्राप्त न हो सके तो उस स्थिति में आकाशगुण बहुल भूमि के जल का सेवन करना चाहिए।

भूमि-जल के विभिन्न स्वाद

आकाश से गिरा हुआ जल स्थान-विशेष के कारण मधुर आदि किसी एक रस को प्राप्त करता है। यह जल (१) नदी, (२) नद, (३) सरोवर, (४) तड़ाग, (५) वापी,

(६) कूप (७) चुण्टी, (८) प्रसवण (झरना), (९) उद्भिद् (पृथ्वी को फोड़ कर निकला हुआ स्रोता), (१०) विकिर (रेत को हटाने पर निकलने वाला पानी, (११) केदार रेत के नीचे बहने वाला पानी तथा (१२) 'ताव (छोटे तालाब पोखर आदि) स्थानों में स्थित रहता है।

कुछ आचार्यों का कहना है कि वर्षा से गिरा हुआ जल (१) लाल, (२) कपिल, (३) पाण्डु, (४) पीली, (५) नीली तथा (६) श्वेत रंग की मिट्टी के संयोग से क्रमशः (१) मधुर, (२) अम्ल, (३) लवण, (४) कटु, (५) तिक्त तथा (६) कषाय—स्वाद को ग्रहण करता है। परन्तु इसके विपरीत अन्य आचार्यों का यह कथन है कि मिट्टी के रंग के कारण जल के स्वाद में परिवर्तन नहीं होता, अपितु पृथ्वी के गुण-विशेष के कारण ही उसका स्वाद बदल जाता है। यह कथन अधिक समीचीन है और इसके अनुसार (१) पृथ्वी गुण बहुल भूमि का जल अम्ल एवं लवण रस वाला, (२) अग्नि गुण बहुल भूमि का जल कटु एवं तिक्त रस वाला, (३) वायु गुण बहुल भूमि का जल कषाय रस वाला तथा आकाश गुण बहुल भूमि का जल अव्यक्त रस वाला होता है। चूंकि आकाश भी अव्यक्त है, अतः आकाश गुण बहुल भूमि का अव्यक्त रस वाला जल ही ग्रहण करना चाहिए।

अन्तरिक्ष जल के अभाव में यही जल सेवन करने योग्य कहा गया है।

आकाशगुण बहुल भूमि का जल

(१) कुआं, (२) नदी, (३) सरोवर, (४) तालाब,

(५) झरना,(६) सोता तथा (७) बावलो का जल आकाशगुण बहुल होता है। किस स्थान के तथा किस प्रकार के जल के क्या-क्या गुणावगुण होते हैं, इसे आगे बताया गया है।

ऋतु के अनुसार सेवनीय जल

वर्षाऋतु में अन्तरिक्ष जल अथवा उद्भिद्(सोते का)जल का सेवन करना चाहिए।

शरद् ऋतु में हर प्रकार के जल का सेवन किया जा सकता है, क्योंकि इस ऋतु में सभी जल शुद्ध हो जाते हैं।
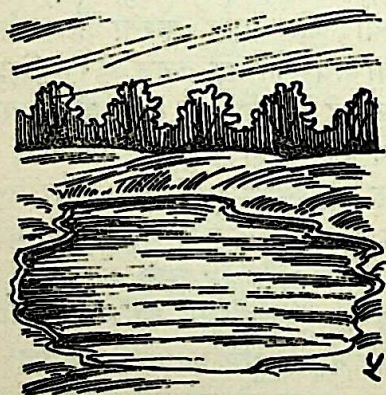
[तालाब]

हेमन्त ऋतु में सरोवर अर्थात् तालाब का जल पिया जा सकता है।

वसन्त ऋतु में कुएं अथवा झरने का जल पीना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में कुएं अथवा झरने का जल सेवन करना चाहिए।

शिशिर ऋतु में बावली का जल सेवन करना चाहिए।

यदि सूखा पड़ गया हो तथा जल की कमी हो तो उस स्थिति में जीवन-रक्षा के लिए जिस प्रकार का भी जल उपलब्ध हो, उसी का सेवन करना चाहिए।

असेवनीय जल

मल-मूत्र, शव आदि से दूषित, कीट-युक्त, तिनके, पत्तों से मलिन, विषयुक्त तथा वर्षा के प्रारम्भ का जल सेवन नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसे जल का सेवन करता है अथवा उससे स्नानादि करता है, उसे अनेक प्रकार के वाह्य तथा आभ्यान्तरिक रोगों का शिकार होना पड़ता है।

जो जल कीचड़, काई, तृण, पद्मपत्र आदि से आच्छादित रहता हो, जिस पर चन्द्रमा और सूर्य की किरणें न पड़ती हों, जिस जल से वायु का स्पर्श न हो पाता है तथा जिस जल में गन्ध, रंग तथा रस स्पष्ट प्रतीत होते हों, ऐसे जल को दूषित समझ कर त्याग देना चाहिए। स्नान अथवा पीने आदि के कार्यों में ऐसे जल का सेवन निषिद्ध कहा गया है।

दूषित-जल के दोष

उपर्युक्त प्रकार के दूषित जल में निम्नलिखित ६ दोष कहे गये हैं।

(१) स्पर्श दोष, (२) रूप दोष, (३) रस दोष, (४) गन्ध दोष, (५) वीर्य दोष और (६) विपाक दोष।

(१) **स्पर्श दोष**—कर्कशता, चिकनाहट, उष्णता, तथा दांतों में लगना—ये सब जल के स्पर्श दोष हैं।

(२) रूप दोष—कीचड़, बालू, काई, तथा कई प्रकार के रंगों की विद्यमानता—ये सब जल के रूप दोष हैं।

(३) रस दोष—रस का स्पष्ट होना ही जल का रस-दोष है।

(४) गन्ध दोष—अरुचिकर गन्ध का होना ही जल का गन्ध दोष है।

(५) वीर्य दोष—जिस जल का सेवन करने से प्यास लगे, शरीर में भारीपन और दर्द का अनुभव हो तथा कफ
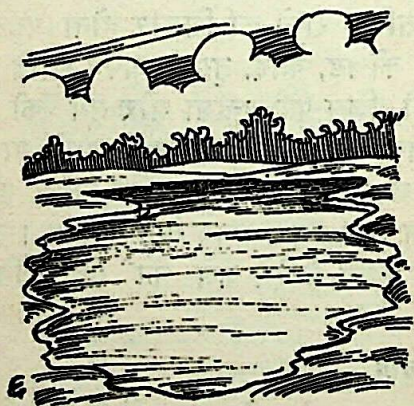
[झील]

एवं लार बहना आदि लक्षण प्रकट हों—उस जल को वीर्य दोष युक्त समझना चाहिए।

(६) विपाक दोष—जिस जल का सेवन करने से भोजन देर में पचे तथा पेट में गुड़गुड़ाहट का शब्द हो, उसे विपाक दोष वाला समझना चाहिए।

दूषित जल को स्वच्छ किये बिना नहीं पीना चाहिए। दूषित जल का सेवन पाण्डु रोग, त्वचा रोग, अपचन, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अजीर्ण, दर्द, पेट में गोला उठना आदि अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देता है।

विभिन्न नदियों के जल के गुण

पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का जल हल्का होता है, अतः वह पथ्य (सेवन करने के योग्य) है।

पूर्व की ओर बहने वाली नदियों का जल भारी होता है, अतः उसे अपथ्य (सेवन न करने योग्य) माना जाता है।

दक्षिण की ओर बहने वाली नदियों का जल सामान्य होने के कारण अधिक दोष-युक्त नहीं होता, अतः वह साधारणतः सेवन करने योग्य माना जाता है।

सह्याद्रि पर्वत से निकलने वाली नदियों का जल कुष्ठ रोग उत्पन्न करने वाला होता है।

विन्ध्याचल पर्वत से निकलने वाली नदियों का जल कुष्ठ तथा पाण्डु रोग को उत्पन्न करता है।

मलय पर्वत से निकलने वाली नदियों का जल कृमियों को उत्पन्न करता है।

महेन्द्र पर्वत से निकलने वाली नदियों का जल श्लीपद तथा उदर रोगों को उत्पन्न करता है।

हिमालय पर्वत से निकलने वाली नदियों का जल हृदय रोग, शोथ, शिरोरोग, श्लीपद तथा गलगण्ड रोगों को उत्पन्न करता है।

अवन्ती (उज्जैन) के पूर्व तथा पश्चिम से बहने वाली नदियों का जल अर्श (बवासीर) रोग को उत्पन्न करता है।

मानसरोवर आदि से निकलने वाली नदियों का जल पथ्य, बलकारी तथा आरोग्य देने वाला होता है।

रेतीले मैदानों में बहने वाली नदियों का जल तिक्त, लवण, रस-युक्त, हल्का, मीठा तथा बलकारक होता है।
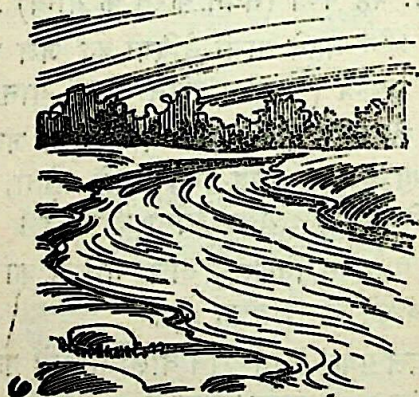
[पर्वत से निकलने वाली नदी]

तीव्र गति से बहने वाली नदियों का स्वच्छ जल लघु गुण (हल्का तथा सुपाच्य) युक्त होता है।

मन्द गति से बहने वाली नदियों का तथा गन्दे और शैवाल युक्त जल वाली नदियों का पानी 'गुरु' (भारी) होता है।

——

विभिन्न प्रकार के जल के गुण

(१) नदी का पानी—सामान्यतः नदियों का पानी मधुर, हल्का, अग्निदीपक, वातल (बादी), रुक्ष तथा लेखन कारक होता है। परन्तु कुछ नदियों का पानी दोष युक्त, कफकारक तथा भारी भी होता है।

(२) तालाब का पानी—तालाब का पानी स्वादिष्ट, कसैला, कटु, बादी और पाकी होता है।

(३) झील का पानी—झील का पानी बलकारक, कसैला, मधुर, लघु तथा तृषा-नाशक होता है।

(४) बावड़ी का पानी—बावड़ी का पानी क्षार, कटु, वात एवं श्लेष्मा-नाशक तथा पित्त-कारक होता है।

(५) पोखर का पानी—पोखर का पानी रुक्ष, मधुर, अग्निवर्द्धक तथा कफ कारक होता है।

(६) पल्लव का पानी—पल्लव अर्थात् छोटे गड्ढे का पानी मधुर, भारी तथा विशेष दोष युक्त होता है।

(७) केदार का पानी—केदार अर्थात् फल्गु आदि का पानी मधुर, भारी तथा दोष युक्त होता है।

(८) विकिर का पानी—विकिर अर्थात् रेत को हटाने से जो पानी निकलता है, वह कटु, खारी, श्लेष्मा-नाशक, लघु तथा दीपन होता है।

(९) सोते का पानी—भूमि फोड़कर निकलने वाले सोते का पानी मधुर, पित्त-शामक तथा दाहक होता है।

(१०) झरने का पानी—झरनें का पानी दीपन, हृद्य, कफ-नाशक तथा हल्का होता है।

(११) कुयें का पानी—कुएं का पानी क्षारयुक्त, पित्तल, कफ-नाशक, दीपन, पाचक तथा हल्का होता है।
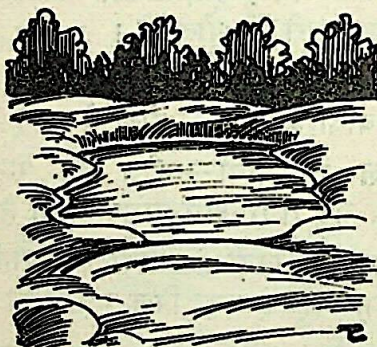
[पोखर]

(१२) रेतीली जगह का पानी—रेतीली जगह से निकला हुआ पानी साफ होता है, उसमें गंदगी नहीं होती।

(१३) चूने की जगह का पानी—चूने वाली जगह का पानी प्रायः अच्छा नहीं होता। उसमें गंदगी भी रहती है और वह रेतली जमीन की तरह छना हुआ भी नहीं हाता।

(१४) पथरीली जगह का पानी—पथरीली जगह का पानी अच्छा होता है।

(१५) सतही पानी—नदियों, झीलों, तालाबों और चश्मों के पानी को सतही पानी अर्थात् जमीन के ऊपरी

भाग का पानी कहा जाता है। इनके पानी में प्रायः धूल मिट्टी तथा अनेक प्रकार की गन्दगी सम्मिलित हो जाती हैं, अतः इनके पानी को शुद्ध किये बिना उपयोग में नहीं लेना चाहिए।

(१६) समुद्र का पानी—समुद्र का पानी लवणमिश्रित, दुर्गन्धयुक्त एवं सब दोषों को कुपित करने वाला होता है।

(१७) वर्षा का पानी—अच्छे बर्तनों में इकट्ठा किया हुआ वर्षा का स्वच्छ पानी त्रिदोष नाशक, बलकारक तथा रसायन होता है। परन्तु मौसम की प्रारंभिक दो-तीन बरसातों का पानी धूल-मिश्रित होता है, अतः उसे उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

(१८) आनूप देश का पानी—जहां बहुत से झरने, तालाब, झील आदि जलाशय, नदी-नाले आदि हों, वर्षा अधिक होती हो तथा शीतल वायु चलती रहती हो, जहां की पृथ्वी हरी घास से शोभायमान रहती हो जहां अनेक प्रकार के धान तथा चावल उत्पन्न होते हों, जहा भारी तथा मधुर रस वाली ईख बारह महीने पैदा होती हो, ऐसे क्षेत्र को अनूप देश' कहा जाता है। भारतवर्ष में बंगाल तथा आसाम ही ऐसे देश हैं। अनूप देश का पानी अनेक दोषों से युक्त तथा निन्दित कहा गया है।

(१९) जांगल देश का पानी—जो क्षेत्र मैदानी हो, जहां दूर-दूर और कहीं-कहीं पास भी कांटेदार वृक्ष हों, जलाशय कम हों, हवा उष्ण तथा तेज चलती हो, छोटे-छोटे पर्वत हों, वृक्ष पत्र-हीन हों, जमीन रेतीली हो, सूर्य के ताप से

कुओं का जल घट जाता हो और जहां ईख तथा चावल पैदा न होते हों, ऐसे क्षेत्र को 'जांगल देश' कहा जाता है। भारतवर्ष में राजस्थान का 'मारवाड़' क्षेत्र ऐसा ही जांगल देश है। जांगल देश का पानी दोषों से रहित तथा प्रशंसनीय होता है।
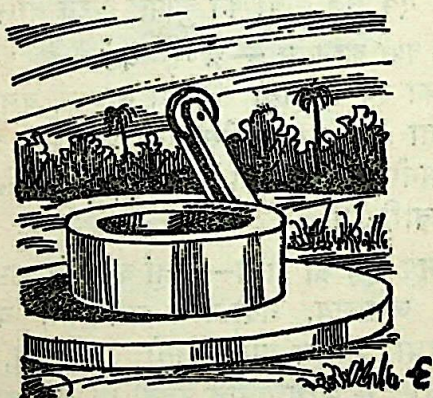
(२०) सामान्य देश का पानी—जिस क्षेत्र में आनूप देश तथा जांगल देश—दोनों के लक्षण अधिकता से पाये जाते हों, जहां न अधिक वर्षा हो, न बहुत अधिक गरमी, जहां न अधिक सूखा हो और न अधिक हरियाली ही, ऐसे क्षेत्र को 'सामान्य देश' या 'साधारण देश' कहा जाता है। भारतवर्ष में ऐसा क्षेत्र उत्तर प्रदेश है। सामान्य देश का पानी तृष्णा-नाशक, स्वादु, शीतल, अग्नि दीपक, सुपाच्य, लघु तथा आनन्द-वर्द्धक होता है।

(२१) नलों का पानी—बड़े नगरों में नलों का पानी

मिलता है। इस पानी को नदी, तालाब, झील अथवा कुओं से संग्रहीत करके बड़े-बड़े हौजों में भरा जाता है तथा अनेक विधियों से साफ करके सप्लाई किया जाता है, अतः यह पानी सामान्यतः अच्छा होता है। यदि नल द्वारा सप्लाई किये जाने वाले पानी की सफाई का ठीक प्रबन्ध न हो तो ऐसा पानी बिमारियां फैलाने वाला सिद्ध होता है।
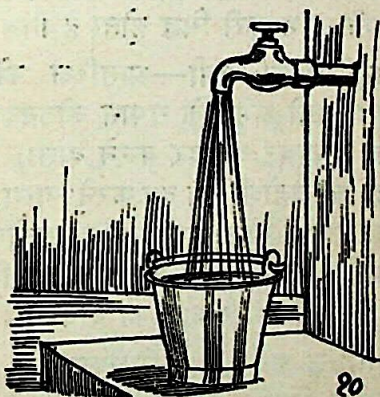
[नल से आने वाला पानी]

(२२) उष्ण जल—गरम पानी कफ, मेद, वायु तथा आम का नाशक, वस्ति-शोधक, अग्निदीपक, कास, श्वास तथा ज्वर को हरने वाला एवं सदैव पथ्य अर्थात् हितकर होता है।

(२३) पका हुआ जल—आग पर पका कर चौथाई किया हुआ आग रहित एवं निर्मल जल विशेष गुणकारी तथा पाक में लघु होता है।

(२४) **बासी जल**—बासी पानी अम्ल हो जाता है। वह कफ को कुपित करता है तथा प्यासे मनुष्य के लिये हितकर नहीं होता, अतः उसका सेवन नहीं करना चाहिए।

(२५) **गरम करके ठंडा किया हुआ पानी**—गरम करके ठंडा किया हुआ पानी पित्तजन्य रोग, सन्निपातजन्य रोग, तथा मद्य पान से उत्पन्न रोगों में हितकर रहता है। यह दाह, अतिसार, रक्तपित्त, वमन, भ्रान्ति, विष-रोग एवं भ्रम-रोगों में भी लाभकारी सिद्ध होता है।

(२६) **अन्तरिक्ष का पानी**—अन्तरिक्ष की मूसलाधार वर्षा से प्राप्त पानी अमृत के समान जीवनदायिनी, तृप्ति कारक, धारक, थकावट को दूर करने वाला, तृषा-शामक, मद एवं मूर्च्छा की बेहोशी को दूर करने वाला, निद्रा, तन्द्र, दाह एवं क्लान्ति को नष्ट करने वाला सर्वोत्तम पथ्य है। यह रोगी तथा स्वस्थ—दोनों प्रकार के प्राणियों के लिए हितकर है। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं होता।

(२७) **नारियल का पानी**—नारियल के भीतर रहने वाला पानी मधुर, स्निग्ध, शीतल, अग्निदीपक, मूत्रल, वीर्य-वर्द्धक, पित्त-नाशक, तृषा-शामक, हृदय को बलदायक तथा भारी होता है।

जल को स्वच्छ करने की विधियां

निम्नलिखित सात वस्तुएं गन्दे जल को स्वच्छ करती हैं—

(१) निर्मली, (२) गोमेदक, (३) विषग्रंथो, (४) काई की जड़, (५) मोती, (६) मणि और (७) फिटकरी।

दूषित पानी को अग्नि पर चढ़ा कर गरम करके सूर्य का धूप में तपाकर, लोहे, बालू अथवा मिट्टी के गोले को अग्नि में गरम करने के बाद पानी में बुझाने से शुद्ध किया जा सकता है।

नाग केशर, राज चम्पा, कमल तथा पाटला के पुष्पों से जल की दुर्गन्ध को दूर किया जा सकता है।

सदैव स्वच्छ, दुर्गन्ध-रहित, ताजा, हल्का तथा सुवासित जल ही पीना चाहिए।

पानी को रखना

पानी को सोना, चांदी, तांबा, कांसा, मणि अथवा मिट्टी के बर्तन में ही भरकर रखना चाहिए।
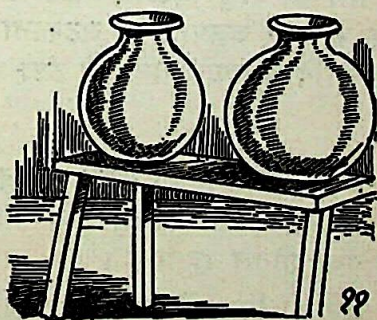
[तिपाई पर रखे हुए जल-पात्र]

पानी के बर्तनों को (१) तख्ता, (२) तिपाई, (३) मूंज की बनी गिंडुरी, (४) शिकहर (छीका) अथवा (५) जमीन के फर्श से ऊंची किसी अन्य वस्तु अथवा स्थान पर रखना

चाहिए। पानी सदैव ऐसी जगह रखना चाहिए जहां हवा, धूप, और रोशनी पहुंचती हो। बन्द अथवा अंधेरी जगह में पानी को नहीं रखना चाहिए।

पानी को शीतल करना

पानी को ठण्डा करने के सात उपाय बताये गए हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) जल-पात्र को वायु में रखना।

(२) जल-पात्र के ऊपर पानी से भीगा हुआ गीला कपड़ा लपेटना तथा उसे पानी से हर समय तर रखना।

(३) पंखा चलाकर ठंडा करना।

(४) वस्त्र से छानकर ठंडा करना।

(५) जलपात्र को बालू के ऊपर रखना।

(६) छीके के ऊपर जलपात्र को लटकाना।

(७) यन्त्र आदि चलाकर पानी को ठंडा करना।

पानी का संग्रह

हर प्रकार के भूमि जलों का संग्रह प्रातःकाल ही कर लेना चाहिए। इस समय का जल अन्य समय की अपेक्षा अधिक निर्मल तथा शीतल रहता है।

दिन भर सूर्य की किरणों से तथा रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणों से व्याप्त रुक्षता रहित जल अन्तरिक्ष-जल की भांति गुणकारी तथा विशेष कर नेत्र-रोगों के लिए हितकर होता है।

वर्षा के पानी का संग्रह पत्थर अथवा लकड़ी की टंकी

में करना चाहिए। सीसे के बरतन अथवा धातु के पात्र में वर्षा के जल का संग्रह नहीं करना चाहिए।

शीतल जल का सेवन

पित्त-वृद्धि, उष्ण-दाह, विष-विकार, मूर्च्छा, भ्रम, मद्य, थकावट, श्वास, वमन तथा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में शीतल जल का सेवन करना लाभकारी होता है।

उष्ण जल का सेवन

प्रतिश्याय (जुकाम), पार्श्वशूल (पसली का दर्द) वात-रोग, गल ग्रह, नवीन-ज्वर, हिक्का, आध्मान रोग तथा चिकनी वस्तुओं के खाने-पीने के तुरन्त बाद ठण्डे पानी का सेवन नहीं करना चाहिए। इन स्थितियों में गरम जल का सेवन करना चाहिए।

गरम वस्तुओं के सेवन अथवा गर्म-पेय (चाय आदि) को पीने के बाद भी कुछ समय तक शीतल जल का सेवन नहीं करना चाहिए।

धीरे-धीरे पानी पीना

सामान्यतः पानी को एक साथ पिया जाता है, परन्तु निम्नलिखित रोग होने पर पानी को धीरे-धीरे अर्थात् घूंट-घूंट करके पीना चाहिए।

प्रतिश्याय (ज़ुकाम), मुंह से लार बहना, क्षय रोग, अग्निमान्द्य, उदर-रोग, कुष्ठ, ज्वर, अरुचि, नेत्र-रोग, व्रण रोग, मधुमेह श्वयथु तथा श्वास-कास आदि रोग। भोजन करते समय थोड़ा पानी पीने से पेट की अग्नि बढ़ती है।

शरीर में जल का महत्व

हमारे शरीर का ७० प्रतिशत भाग जल द्वारा निर्मित होता है। जल में घुलकर ही भोजन हमारे शरीर के भीतर प्रवेश करता है तथा जल में ही घुलकर शरीर के भीतर मलिन पदार्थ बाहर निकलते हैं। जल के कारण ही शारीरिक अंगों में लचकीलापन आता है। जल के द्वारा ही सभी पोषक पदार्थ शरीर के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हैं। जल के कारण ही शरीर के सभी अंग तर बने रहते हैं तथा उनमें परस्पर रगड़ नहीं लगने पाती। जलके द्वारा ही शरीर की गरमी सर्वत्र समान रूप से बंट जाती है तथा शरीर का तापमान स्थिर बना रहता है।

जल पीने से ही हमारी तृषा (प्यास) शान्त होती है। जल के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।
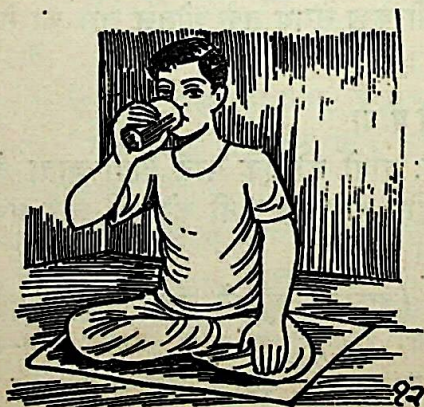
[पानी खूब पीना चाहिए]

प्रतिदिन कितना जल पिया जाए

पानी पीने से शरीर भीतर से स्वच्छ होता है। यदि यथोचित् मात्रा में पानी न पिया जाए तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति में भी कमी आ जाती है।

प्रत्येक पूर्ण मनुष्य को दिन में ढाई सेर से साढ़े तीन सेर तक पानी पीना चाहिए। गरमी की ऋतु में बरसात तथा सरदी की ऋतु की अपेक्षा अधिक पानी पीने की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य दिनभर में आधा सेर से डेढ़ सेर तक मूत्र का त्याग करता है। जब मनुष्य निरोग अवस्था में और उसने यथोचित् पानी पिया हो तो उसके मूत्र का रंग हल्का पीला अथवा पानी के रंग का साफ होता है। परन्तु यदि मूत्र का रंग लाल अथवा भूरा हो तो यह समझ लेना चाहिए कि पानी कम पिया गया है।

ज्वर की अवस्था में मूत्र-पिण्ड का काम अधिक बढ़ जाता है, ऐसी स्थिति में रोगी को खूब पानी पीना चाहिए, ताकि शरीर के भीतरी विषैले सारहीन पदार्थ शीघ्रातिशीघ्र बाहर नकल जायं। यदि ऐसी स्थिति में खूब पानी नहीं पिया जाता, तो विषैले सारहीन पदार्थ शीघ्र न निकल कर रोग को अधिक बढ़ा देते हैं।

पानी कैसा और किस तरह पिया जाय

मनुष्य को सदैव ताजा, शुद्ध और ठण्डा पानी ही पीना चाहिए। परन्तु बर्फ से ठण्डा किया हुआ पानी हानिकारक होता है, अतः उसे नहीं पीना चाहिए।

पीने से पहले पानी को यदि उबाल कर ठण्डा कर लिया जाए तो वह अधिक अच्छा रहता है।

हर प्रकार के रोगियों को पानी खूब पीना चाहिए। जिन्हें ज्वर आता हो उन्हें अधिक ठंडा पानी पीना चाहिए। जिनके आमाशय में दर्द हो और थूक में खट्टा रस निकलता हो, उन्हें थोड़ा गरम पानी पीना चाहिए। छोटे शिशुओं को उबालकर इतना ठंडा किया हुआ पानी कि कुछ गुनगुना बना रहे, पीने के लिए दिन में कई बार देना चाहिए। छोटे बच्चे भोजन के लिए कम, पानी पीने के लिए अधिक रोते हैं।

मूर्च्छा-रोग, पित्त-प्रकोप, धूप आदि के कारण शरीर की उष्णता बढ़ने, शरीर में दाह उत्पन्न होने, विष के प्रभाव से शरीर में गरमी बढ़ने, रक्त-दोष, अधिक नशा करने, सिर में चक्कर आने, कब्ज, अधिक परिश्रम, तमक-श्वास, वमन, खट्टी डकारें आने, ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त तथा उन सभी रोगों में, जिनमें शरीर की गरमी बढ़ जाती है अथवा विष का प्रभाव बढ़ता है—सदैव ठंडा पानी पीना ही लाभदायक है।

एक साथ बहुत अधिक पानी पीने अथवा एकदम पानी न पीने से पेट का अन्न भली-भांति नहीं पच पाता, अतः भोजन करते समय थोड़ा पानी अवश्य पीना चाहिए। परन्तु कुछ विद्वानों के मतानुसार भोजन के बीच-बीच में पानी नहीं पीना चाहिए। भोजन की समाप्ति पर ही थोड़ा पानी पीना चाहिए।

भोजन के अतिरिक्त दिन में अनेक बार थोड़ा-थोड़ा करके पानी पीते रहना अच्छा है। यदि पानी को दो गिलासों में शबंत की भांति डालने के बाद पिया जाए तो उसमें प्राण संचार हो जाता है। ऐसा पानी बहुत लाभदायक रहता है।

उषःपान

रात्रि के समय खा-पीकर जब हम सो जाते हैं, तब उस शयन के समय में पेट के भीतर का पानी सूख जाता है।

[उषः पान]

अतः जब सोकर उठा जाए, उस समय सर्वप्रथम ठंडा जल पीने से शरीर तरो-ताजा हो जाता है।

सोकर जागने का ठीक समय सूर्योदय से पहले का है। उस समय जगते ही एक गिलास ठंडा पानी पीने को 'उषः पान' कहा जाता है। जो लोग किसी कारणवश सूर्योदय

से पूर्व न उठ पाते हों, वे जब भी सोकर उठें उसी समय उन्हें एक गिलास ठंडा पानी अवश्य पीना चाहिए।

प्रात:काल उठकर आधा घण्टे के भीतर ही एक-एक गिलास करके, तीन बार में तीन गिलास पानी पी लेने से कब्ज की शिकायत कभी नहीं रह पाती। जिन लोगों को कब्ज की शिकायत रहती हो, उन्हें उष:पान अवश्य करना चाहिए, इससे उन्हें पर्याप्त लाभ होगा।

पानी से स्नान करना

जिस प्रकार मुंह से पिया हुआ पानी शरीर के भीतरी भाग की सफाई करता है, ठीक उसी प्रकार शरीर के वाह्य अंगों तथा त्वचा की सफाई के लिए प्रतिदिन एक या अधिक बार स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है।

स्नान करने से अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं, शरीर स्वच्छ, सुन्दर तथा स्वस्थ बना रहता है।

त्वचा में सहस्रों छोटे-छोटे छिद्र हैं, जिनके द्वारा शरीर का भीतरी मल पसीने आदि के रूप में निरन्तर बाहर निकलता रहता है। धूल तथा अन्य प्रकार की गन्दगी इन छिद्रों को अवरुद्ध कर देती है। स्नान के द्वारा इन छिद्रों के मुख पर जमी हुई गन्दगी हट जाती है, जिससे भीतरी विष सुविधापूर्वक बाहर निकल जाते हैं और शरीर रोगी नहीं हो पाता।

स्वस्थ पुरुषों को तो प्रतिदिन स्नान करना ही चाहिए, रोगियों को भी प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक है। रोग की अवस्था में मल तथा निकले पदार्थ त्वचा पर अधिक

मात्रा में जम जाते हैं, जिनमें रोग का विष भी मिला होता है। इस विष को हटाने के लिए रोगी को प्रतिदिन स्नान कराना अत्यन्त आवश्यक है। यदि रोगी व्यक्ति को उचित विधि से स्नान कराया जाए, तो वह जल्दी ही रोग-मुक्त हो जाता है।

स्नान का समय

स्नान करने का सबसे अच्छा समय गरम देशों में प्रातः काल है। यदि खाने के बाद स्नान किया जाए तो भोजन और स्नान के बीच कम-से-कम तीन घण्टे का अन्तर अवश्य रखना चाहिए। यदि भोजन करने के बाद शीघ्र स्नान कर लिया जाता है, तो भोजन के पचने में बाधा पड़ती है।

ठंडे देशों में रात्रि को सोते समय स्नान करने का रिवाज है। वे लोग प्रायः गरम पानी से ही स्नान करते हैं और स्नान करने के बाद सो जाते हैं।

कैसे जल से स्नान करें

जहां तक सम्भव हो सके ठंडे जल से ही स्नान करना करना चाहिए।

स्वस्थ अवस्था में शरीर की त्वचा का ताप ९८·४° के लगभग होता है। जब जल का ताप इससे कम होता है, तब यह ठंडा और अच्छा प्रतीत होता है। जब जल का ताप इससे अधिक होता है, तब गरम प्रतीत होता है और त्वचा उसे पसन्द नहीं करती।

स्नान के लिए जल का ताप अग्रलिखित कहा गया है—

ठंड़ा जल—६५° से ८०° फारनहाइट तक।

गरम जल—८०° से ९०°-९८° फारनहाइट तक।

बहुत गरम जल—९८° फारनहाइट से अधिक।

ठंडा जल उत्तेजक होता है तथा शरीर को बल प्रदान करता है। इसके विपरीत गरम जल शरीर में सुस्ती लाता है।

यदि स्नान करने पर त्वचा में गरमी प्रतीत हो, उसमें लाली-सी आ जाए, शरीर में फुर्ती उत्पन्न हो तथा चित्त प्रसन्न हो जाय तो यह समझना चाहिए कि जल का ताप ठीक है। इसके विपरीत, स्नान करने के बाद सर्दी लगे, तबियत गिरने लगे और त्वचामें गरमी न आये तो यह समझना चाहिए कि पानी का ताप ठीक नहीं है।

जो कमजोर व्यक्ति ठंडे पानी को सहन न कर पायें, उन्हें पहले गरम पानी से स्नान करना चाहिए। तत्पश्चात् उसके ताप को धीरे-धीरे कम करते जाना चाहिए। यदि ठंडा पानी किसी भी स्थिति में सहन न हो तो फिर गरम पानी से ही स्नान करना चाहिए। गरम पानी का स्नान थकावट को दूर कर देता है।

जिन लोगों को नींद न आने की बीमारी हो उन्हें रात्रि में सोते समय गरम पानी से स्नान करना चाहिए, इससे उन्हें नींद आने लगेगी।

स्नान करने की विधियां

स्नान करने की अनेक विधियां प्रचलित हैं—

(१) नदी या तालाब में गोते मार कर स्नान करना।

(२) नदी या तालाब में तैरते हुए स्नान करना।

(३) नल के नीचे बैठकर स्नान करना।

(४) किसी पात्र में पानी भर कर, लोटे इत्यादि से उसे अपने शरीर पर डालते हुए स्नान करना।

(५) टब, नांद अथवा नये फैशन के स्नानागार में पानी भरकर, उसमें बैठकर अथवा लेटकर स्नान करना।

पहली चार विधियों से स्नान करते समय शरीर को खूब रगड़-रगड़ कर धोना चाहिए।
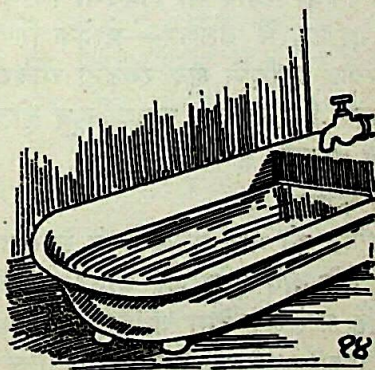
[स्नान करने का विलायती ढंग का टब]

अन्तिम पांचवीं विधि पाश्चात्य देशों में अधिक प्रचलित है। इस विधि से स्नान करते समय टब आदि में भरे हुए पहले पानी को साबुन आदि लगाने के बाद फेंक देना चाहिए तथा दुबारा पुनः साफ पानी भर कर नहाना चाहिए। यदि दूसरी बार के बाद भी पानी को बदल दिया जाए और अधिक अच्छा रहता है।

यदि नहाने के टब के ऊपर फव्वारा लगा हुआ हो और उसमें से निरन्तर साफ़ पानी टब में गिरता रहे और टब में से गदले पानी को आवश्यकतानुसार निकाल देने का प्रबन्ध हो तो ऐसा स्नान बहुत लाभदायक होता है।

गरम पानी से स्नान करने के बाद, अन्त में शरीर के ऊपर ठंडे पानी की फुहार डाली जाए तो ऐसा स्नान शारीरिक-स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है।

स्नान का पानी चाहे गरम हो या ठंडा, स्नान चाहे देशी विधि से किया जाए या विदेशी विधि से, नदी में नहाया जाए या टब में बैठकर—प्रत्येक स्थिति में त्वचा को तौलिया, स्पंज आदि से खूब रगड़ना आवश्यक है। ऐसा करने पर त्वचा में रक्त का भ्रमण खूब होता है, जिससे अत्यधिक लाभ पहुंचता है।

रोगी को स्नान कराना

रोगी व्यक्ति को यदि गरम पानी से स्नान कराना हो तो सर्वप्रथम उसके दांये हाथ को धोना चाहिए, फिर उसे भली-भांति पोंछ कर ढंक देना चाहिए, तत्पश्चात् बांये हाथ कोधोना चाहिए और उसे भी भली-भांति पोंछ कर ढक देना चाहिए। इसके बाद सामने की छाती को धो-पोंछकर ढक देना चाहिए। तत्पश्चात् क्रमशः पीठ, गर्दन, पांव, पेट आदि शरीर के एक-एक अंग को धोकर तथा पोंछकर ढकते रहना चाहिए। इस प्रकार से स्नान कराने से रोगी को ठंड लगने का भय नहीं रहता।

स्नान के लाभ

स्नान करने से शरीर ठंडा हो जाता है। सिर तथा

दिमाग में तरी पहुंचती है। सफाई होती है तथा भूख खूब खुलकर लगती है।

स्नान न करने वालों का सिर भारी हो जाता है। उन्हें रूखा-सूखा तथा ज्वर जैसा प्रतीत होता है।

सर्दी, बुखार, पेट के रोग आदि हर प्रकार की बीमारियों को दूर करने के लिए स्नान करना सर्वोत्तम औषधि है।

शरीर के भीतर पाकस्थली से जो भाप पैदा होती है, वह ठंडे पानी से स्नान करने पर नीचे पेड़ू की ओर आ जाती है तथा मल-मूत्र के साथ बाहर निकल जाती है। यही कारण है कि स्नान करते ही शरीर के सभी अंग शीतल हो जाते हैं तथा एक प्रकार की अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव होता है। यदि स्नान न किया जाए तो शरीर की भीतरी भाप सम्पूर्ण शरीर के भीतर फैलकर उसके सब कल-पुर्जों को बिगाड़ देती है।

भारतीय धर्म ग्रंथों में तीन बार स्नान करके सन्ध्या-वन्दना करने की आज्ञा दी गई है। स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से यह नियम सर्वोत्तम है। स्नान के बाद सन्ध्या-वन्दना में 'प्राणायाम' की क्रिया करनी पड़ती है। एक तो स्नान ही शरीर की सब बीमारियों को दूर कर देता है, दूसरे 'प्राणायाम' जीवनीय-शक्ति को और अधिक बढ़ा देता है। जो लोग इस नियम का पालन करते हैं, उन्हें रोग बहुत ही कम सता पाते हैं।

उड़ीसा तथा पूर्वी बंगाल के लोग ज्वर आ जाने पर ठंडे जल से नहाते तथा ठंडा भात खाते हैं, इससे तेज-से-

तेज ज्वर भी दूर हो जाता है। अतः जो लोग यह समझते हैं कि ज्वर होने पर स्नान नहीं करना चाहिए, वे गलती पर हैं। स्नान ज्वर को ठीक करने का सर्वोत्तम उपचार है।

जल के विशेष-स्नान

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में विभिन्न रोगों को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार के जल-स्नान कराने की विधियां प्रचलित हैं। उन विधियों का विस्तृत वर्णन अगले प्रकरण में किया गया है।

यहां पर केवल इतना ही समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक स्वस्थ या रोगी मनुष्य के लिए स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है और जो लोग नियमित रूप से स्नान करते हैं, वे प्रायः बीमार नहीं पड़ते।

पानी के नाम

संस्कृत तथा हिन्दी में पानी के निम्नलिखित नाम पाये जाते हैं—

(१) पानीय	(२) सलिल	(३) अम्बु
(४) सर्वतोमुख	(५) जीवन	(६) नीर
(७) मेघ प्रसव	(८) कमल	(९) आप
(१०) यादोनिवास	(११) भुवन	(१२) वारि
(१३) कुलीनस	(१४) कबन्ध	(१५) तोय
(१६) जीवनीय	(१७) उदक	(१८) पय
(१९) जलपीथ	(२०) कमन्ध	(२१) पाथ
(२२) अरविन्दानि	(२३) अमृत	(२४) वन
(२५) अघोगति	(२६) कीलाल	(२७) अम्भ

(२८) घनरस (२९) पुष्कर (३०) अर्णं
(३१) चन्द्रोरस (३२) सरिल (३३) सलं
(३४) अभ्रपुष्प (३५) शम्बर (३६) जड़
(३७) स्यन्दन (३८) पिप्पल (३९) अधं
(४०) सम्बल (४१) सवर (४२) उद
(४३) कम्बल (४४) कृपीट (४५) दक
(४६) कोमल (४७) सदन (४८) नार
(४९) वृबूक (५०) कर्बुर (५१) घृत
(५२) कुलीन (५३) कृत्स्न (५४) पर्य्य
(५५) तामर (५६) धरुण (५७) सुरा
(५८) व्योम (५९) जड़ (६०) वाः
(६१) सम्ब (६२) कुश (६३) कं
(६४) दूरा (६५) विष (६६) क
(६७) वाज (६८) काण्ड (६९) ऋत
(७०) क्षर (७१) सर (७२) नभ
(७३) ऊर्ज्जं (७४) मधु (७५) रेत
(७६) सोम (७७) कश (७८) रस
(७९) छद्म (८०) जन्म (८१) ओज
(८२) क्षोद (८३) तुग्या (८४) जामि
(८५) पुरीष (८६) सुरा (८७) सह
(८८) भेषज (८९) क्षत्र (९०) शव
(९१) सर्व (९२) शुभ (९३) रयि
(९४) पूर्ण (९५) गन (९६) गो
(९७) सारंग (९८) क्षोर (९९) पानी
(१००) जीवनाधार

समुद्र के नाम

(१) अमृतोद्भव (२) सागर (३) सिन्धु
(४) पारावार (५) जलधि (६) अब्धि
(७) सरस्वान् (८) अर्णव (९) दधि
(१०) रत्नाकर (११) उदधि (१२) वारीश
(१३) जलधाम (१४) पयोधि (१५) नदीश
(१६) नीरनिधि (१७) अनख (१८) अकूपार
(१९) सरित्पति (२०) समुद्र (२१) उदनवत
(२२) जलागार (२३) सरितेन्द्र

जलाशय के नाम

(१) जलाशय (२) जलाधार
(३) जलस्थान (४) पनघट

नदी के नाम

(१) तरंगिणी (२) तटिनी (३) स्रोती
(४) द्वीपवती (५) सरिता (६) सरि
(७) शैवलिनी (८) ह्रादिनी (९) धुनि
(१०) रोधवक्ता (११) अपगा (१२) ध्वनी
(१३) निर्झरणी (१४) अधगा (१५) सुवती
(१६) स्रोतस्वती (१७) निम्नगा (१८) सारंग
(१९) जलधिगा (२०) आपगा (२१) चतुष्क
(२२) जयमाला (२३) तलोदा (२४) लहरी
(२५) अवर्त्तिनी (२६) सुवन्ती (२७) माला
(२८) सरस्वती (२९) विरेका (३०) धारावती
(३१) सम्बालिनी (३२) कूलंकषा (३३) नदी

तालाब के नाम

(१) जलाशय (२) तड़ाग (३) ह्रद
(४) सरोवर (५) कासार (६) सर
(७) पद्माकर (८) सरसी (९) सत्र
(१०) पुष्करण (११) पल्वल (१२) सरक
(१३) सरस्वत (१४) सरस (१५) सारंग
(१६) जलवान (१७) पुष्कर (१८) ताल
(१९) पोखरा (२०) पोखर

वावड़ी के नाम

(१) दीर्घिका (२) वावड़ी (३) बौली
(४) बावली (५) बापी

झरने के नाम

(१) अम्बुप्रस्रवण (२) सरण (३) स्रोत
(४) वारिवाह (५) निर्झर (६) सोता
(७) जलमाला (८) प्रपात (९) झर
(१०) झरना (११) उत्स

सप्त समुद्रों के नाम

(१) क्षीरोद (२) लवणोद (३) दध्युद (४) घृतोद
(५) सुरोद (६) ईक्षूद (७) स्वादूद ।

भूमण्डल के सात महासागरों के नाम

(१) अन्ध महासागर (२) प्रशान्त महासागर
(३) हिन्दमहासागर (४) उत्तरीध्रुव सागर
(५) दक्षिणीय ध्रुवसागर (६) हिम महासागर
(७) भूमध्य सागर

ठंडे पानी के वैज्ञानिक स्नान

प्राकृतिक-चिकित्सा विधि में ठण्डे पानी के चार स्नान मुख्य कहे गए हैं।

(१) सर्वांग स्नान या होल-बाथ (Whole-Bath)
(२) कीचड़-स्नान या मड-बाथ (Mud-Bath)।
(३) नाभिस्नान या हिप बाथ (Hip-Bath)।
(४) लिंग स्नान या सिज-बाथ (Sitz-Bath)

इन स्नानों के विषय में अलग-अलग नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिए—

सर्वाङ्ग स्नान या होल बाथ

ठंडे जल में गोता मार कर स्नान करने को सर्वांग-स्नान या होल बाथ (Whole-Bath) कहा जाता है।

भारतवर्ष में इस स्नान का विशेष प्रचलन है। नदी, तालाब, नहर अथवा समुद्र के जल में लोग इसी प्रकार गोते (डुबकी) लगा-लगाकर स्नान करते हैं।

यूरोपीय ठंडे देशों में सर्वांग-स्नान बहुत कम किया जाता है। प्रायः छुट्टियों तथा धूप के दिनों में ठंडे देशों के निवासी सर्वांग-स्नान करते हैं।

भारतवर्ष चूंकि उष्ण देश है, अतः यहां प्रत्येक ऋतु में सर्वांग-स्नान किया जाता है।

सर्वांग-स्नान से शरीर एकदम हल्का; फुर्तीला तथा स्वस्थ बना रहता है।

कैसो भी जाड़े की ऋतु हो, जल में गोता मार कर स्नान करने के थोड़ी ही देर बाद शरीर में गर्मी आ जाती है और ठंड दूर भाग जाती है।
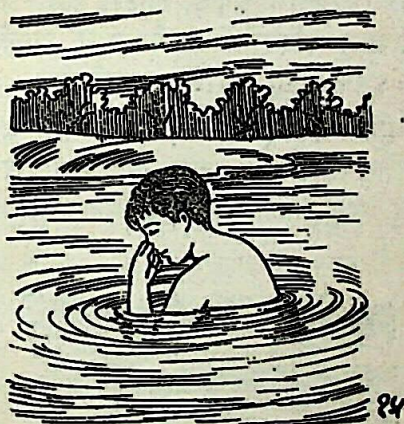
[सर्वांग-स्नान]

नदी या तालाब में शीत ऋतु में स्नान करना हो तो सूर्योदय होने से कुछ पूर्व ही कर लेना चाहिए। उस समय पानी गरम रहता है और शरीर को अधिक ठंड महसूस नहीं होती। शीत ऋतु में सूर्योदय हो जाने के बाद नदी-तालाबों का पानी अधिक ठंडा हो जाता है।

सर्वांग-स्नान के अपरिमित गुण हैं। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को नियमित रूप से सर्वांग-स्नान प्रतिदिन अवश्य करना चाहिए।

कीचड़ स्नान या मड-बाथ

मिट्टी और पानी को मिलाकर जो कादा तैयार होता है, उसे 'कीचड़' कहते हैं। स्नान के लिए कीचड़ ऐसी मिट्टी का होना चाहिए, जिसमें कंकड़, कांटा, कूड़ा आदि कुछ न हो। तालाबों तथा नदियों में पाई जाने वाली बालूदार चिकनी मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम रहती है।

गीली मिट्टी अर्थात् कीचड़ को अपने सम्पूर्ण शरीर पर भली-भांति लपेटने के बाद ठंडे पानी से जो स्नान किया जाता है, उसे कीचड़ स्नान या मड-बाथ (Mud bath) कहा जाता है।
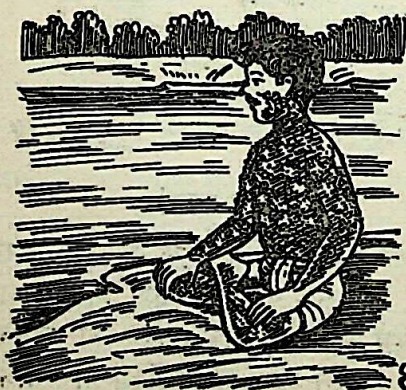
[कीचड़-स्नान]

मिट्टी और पानी ये दोनों ही गरमी के परम शत्रु हैं। अतः इन दोनों के योग से तैयार कीचड़ को भली-भांति शरीर पर लपेट कर यदि स्नान किया जाय तो उससे

शरीर की गरमी पूर्णतः शान्त होतो है, साथ ही शरीर को त्वचा कोमल, सुन्दर एवं नीरोग बन जाती है।

मिट्टी अनेक प्रकार के रोगों को भी नष्ट करती है। कीचड़ तथा मिट्टी के लाभ तथा उपयोगों की विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए हमारी 'मिट्टी के गुण तथा उपयोग' पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

नाभि-स्नान या हिप-बाथ
(Hip bath)

इसमें ठंडे जल का प्रयोग किया जाता है। इस स्नान में बाथ टब के बीच में बैठकर जांघ के ऊपर से लेकर नाभि तक का हिस्सा जल में डुबाया जाता है तथा जांघ से लेकर पांव के नीचे का सम्पूर्ण हिस्सा टब के बाहर रखना पड़ता है। इसे 'नाभि-स्नान' के अतिरिक्त 'कटि-स्नान' भी कहा जाता है।
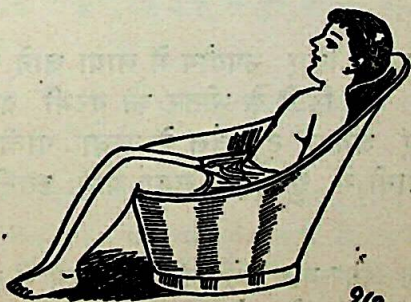
[नाभि-स्नान]

हिप-बाथ लेने के लिए टब में इस प्रकार से आड़े-

तिरछे बैठना चाहिए कि जांघ से नीचे तथा नाभि से ऊपर का हिस्सा टब के बाहर ही रहे तथा केवल जांघ से कमर तक का भाग टब के भीतर रहे।

इस प्रकार बैठने में टब में जितना भी पानी समा सके, उतना ही ठंडा जल भर देना चाहिए।

नाभि-स्नान अर्थात् हिप-बाथ के दो उपभेद हैं—

(१) फ्रिक्शन हिप-बाथ तथा (२) स्वाइन बाथ इनके विषय में नीचे लिखे अनुसार ही समझना चाहिए—

फ्रिक्शन हिप-बाथ
(Friction Hip bath)

हिप-बाथ लेते समय पेड़ू का घिस-घिसकर शरीर के इस भाग को ठण्डा करने का नाम 'फ्रिक्शन हिप-बाथ' (Friction hip bath) अथवा 'रगड़ के साथ नाभि-स्नान' है।

इस स्नान के लिए उपयोग में लाया जाने वाला पानी ६८ डिग्री से ८४ डिग्री के भीतर की गरमी वाला होना चाहिए। कुएं अथवा ट्यूबवैल के ताजा पानी में अथवा तालाब के पानी में सुबह के समय प्रायः इतनी ही गरमी रहती है।

'फ्रिक्शन हिप-बाथ' में पानी के टब में बैठ जाने के बाद थोड़ा-सा पीछे की ओर झुककर दाएं हाथ में एक खुरदरा तौलिया लेकर, उससे पेड़ू को लगातार घिसना चाहिए।
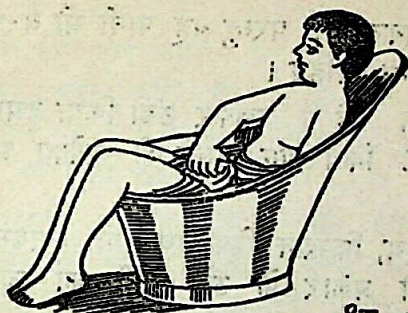
[रगड़ के साथ नाभि-स्नान]

रगड़ने का नियम यह है कि एक बार कमर के दाईं ओर के छोर से लेकर बाईं ओर के छोर तक तथा दूसरी बार कमर में जहां धोती लपेटी जाती है अथवा पायजामा बांधा जाता है, वहां से लेकर नीचे पेड़ू के नीचे वाले हिस्से के अन्तिम भाग तक रगड़ रगड़ कर, शरीर के इस भाग को ठंडा करना चाहिए।

रगड़ने को क्रिया न तो बहुत जोर से करनी चाहिए और न बहुत धीरे-धीरे ही।

गरमी के दिनों में इस बाथ के लिए जितना अधिक ठंडा पानी मिल सके, उतना ही अच्छा है। परन्तु पानी एकदम बर्फ के समान ठंडा भी नहीं होना चाहिए और न पानो की जगह बरफ का ही इस्तेमाल करना चाहिए।

जिन स्थानों पर गरमी के दिनों में ठंडा पानी न मिल सके, वहां पर पानी में थोड़ी-सी बरफ मिलाकर उसे ठंडा

किया जा सकता है, परन्तु वह पानी भी बरफ के समान ठंडा नहीं होना चाहिए।

मिट्टी के घड़े में रखकर ठंडा किया हुआ पानी बर्फ डालकर ठंडे किये गए पानी की अपेक्षा अधिक अच्छा रहता है।

हिप-बाथ, फ्रिक्शन हिप-बाथ तथा स्पाइन-बाथ—तीनों में ही इसी प्रकार के ठंडे पानी का उपयोग करना चाहिए।

स्पाइन-बाथ

स्पाइन-बाथ का मतलब है—ठंडे जल से भरे हुए बाथ-टब में चित्त सोकर स्नान लेना। इसमें भी जांघ से लेकर पांव तक तथा गले से लेकर सिर तक का हिस्सा टब के बाहर रखना पड़ता है। शरीर का शेष भाग पानी में डूबा रहना चाहिए।
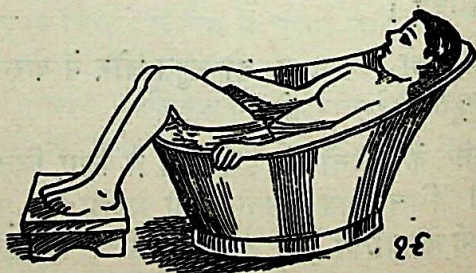
[स्पाइन-बाथ]

स्वाइन बाथ भी हिप-बाथ का ही एक प्रकार है—यह बात पहले कही जा चुकी है, परन्तु हिप-

बाथ' तथा स्पाइन-बाथ में जो मुख्य अन्तर है, उसे नीचे लिखे अनुसार समझ लेना चाहिए—

किसी कटोरे में यदि गरम दूध भरा हुआ हो और उसे यों ही जमीन पर रख दिया जाए तो वह कुछ अधिक देर में ठंडा होगा। परन्तु यदि उस गरम दूध के कटोरे को एक दूसरे बड़े तथा ठंडे पानी से भरे हुए बर्तन में रख दिया जाय तो वह दूध जल्दी ही ठंडा हो जाएगा।

हिप-बाथ और स्पाइन-बाथ में यही मुख्य अन्तर है। हिप-बाथ शरीर की भीतरी गरमी को कुछ अधिक देर में ठंडा करता है और स्पाइन-बाथ कुछ जल्दी ठंडा कर देता है।

हिप-बाथ के लिए आवश्यक सामान

हिप-बाथ, फ्रिक्शन हिप-बाथ अथवा स्पाइन-बाथ—तीनों ही एक विशेष प्रकार से निर्मित टब में बैठकर लिये जाते हैं, जिसका स्वरूप नीचे के चित्र में प्रदर्शित किया गया है—
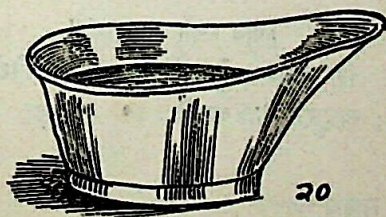
[हिप-बाथ लेने का टब]

यह टब टीन का बना होता है तथा बाजार में बना-बनाया आसानी से मिल जाता है अथवा बनवाया जा सकता है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि हिप-बाथ या स्पाइन-बाथ लेते समय पावों को टब के पानी से बाहर रखना चाहिए, अतः पावों को रखने की सुविधा के लिए लकड़ी की एक छोटी-सी चौकी भी टब के साथ ही बनवा अथवा खरीद लेनी चाहिए। टब में बैठकर अथवा लेटकर इस चौकी पर पांव रखने से बहुत आसानी रहती है और आराम मिलता है।
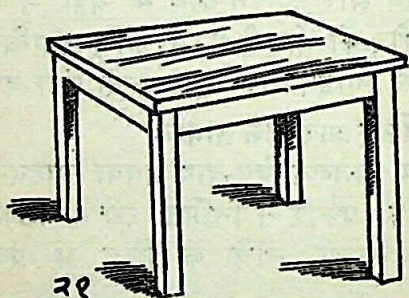
[पांव रखने की चौकी]

फ्रिक्शन हिप-बाथ के लिए एक रोयेंदार तौलिया अथवा मोटे खद्दर के कपड़े का टुकड़ा बहुत अच्छा रहता है।

हिप-बाथ का समय

हिप-बाथ, फ्रिक्शन हिप-बाथ अथवा स्पाइन-बाथ लेने का समय प्रायः तब तक का माना जाता है, जब तक कि शरीर में गरमी बनी रहे। इसके लिए १० से ६० मिनट तक का समय पर्याप्त रहता है। जो लोग बहुत

कमज़ोर हों उनके लिए अथवा दूध पीने वाले बच्चों के लिए २ से ५ मिनट तक का समय ही पर्याप्त है।

जो लोग स्वस्थ्य हों, वे अपनी इच्छानुसार इस बाथ को चाहे जितनी देर तक ले सकते हैं।

जब तक शरीर हल्का और ठंडा न मालूम हो, तब तक पहले बताये गए अनुसार पेड़ू को रगड़ते रहना चाहिए।

हिप-बाथ का समय पूरा हो जाने के बाद शरीर के अन्यान्य भागों को नीचे लिखे क्रम से स्नान कराना चाहिए—

सर्वप्रथम कण्ठ से लेकर कमर तक, फिर गर्दन के पिछले हिस्से से लेकर कमर तक, फिर दायां हाथ, फिर बायां हाथ और उसके बाद गले तथा सिर को धोना चाहिए। सबके अन्त में टब से बाहर निकलकर पांव के निचले भाग को खूब अच्छी तरह से धो लेना चाहिए तथा अन्यान्य भागों को भी खूब पानी लेकर साफ करके सम्पूर्ण स्नान कर लेना चाहिए।

जो लोग अत्यधिक दुर्बल हों, जिन्हें ज्वर हो अथवा जो किसी अन्य रोग से ग्रसित हों, उनके शरीर के उन भागों को जो टब के बाहर हों, स्नान के समय गरम कम्बल से ढक देना ठीक रहता है।

जिन लोगों को ज्वर तो हो, परन्तु जो अत्यधिक दुबल अथवा बहुत दिनों के रोगी न हों, उन्हें गरमी के दिनों में कम्बल ढकने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जाड़े के दिनों में रोगी तथा स्वस्थ-दोनों ही प्रकार के लोगों को हिप-बाथ या स्पाइन-बाथ लेते समय टब से बाहर वाले शरीर के खुले

हुए भागों को गरम कम्बल से ढंक लेना ही अच्छा रहता है।

हिप-बाथ या स्पाइन बाथ जाड़े के दिनों में कम समय तक लेना चाहिए। गरमी के दिनों में इन्हें अधिक समय तक लिया जा सकता है।

फ्रिक्शन हिप-बाथ रोगी की शारीरिक-शक्ति को देख-कर ही देना चाहिए।

हिप-बाथ दिन में एक से अधिक बार भी लिया जा सकता है। हिप-बाथ लेने की संख्या रोगी की अवस्था को देखकर निर्धारित करनी चाहिए।

स्वस्थ लोगों को प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही शौच से निवृत्त होकर, हाथ-मुंह धोने के बाद, सूर्योदय से पहिले ही एक बार हिप-बाथ ले लेना बहुत ही लाभदायक रहता है।

हिप-बाथ लेने के कम-से-कम एक घण्टे बाद ही भोजन करना चाहिए। इसी प्रकार यदि दोपहर या रात्रि के समय भी हिप-बाथ लेना हो तो भोजन करने के कम-से-कम तीन घण्टे बाद लेना चाहिए। खाये हुए भोजन के भली-भांति पच जाने के पूर्व ही पेड़ू पर ठंडा पानी देना बहुत बुरा होता है।

धूप में बैठकर हिप-बाथ नहीं लेना चाहिए। जिस स्थान में हवा तथा छाया दोनों ही हों—वहीं पर हिप-बाथ लेना अच्छा रहता है।

हिप-बाथ के लाभ

हिप-बाथ या नाभि-स्नान से शरीर की गरमी बाहर

निकल जाती है। आंतों की स्वाभाविक गति तीव्र होती है। बड़ी आंतों से चिपका हुआ मल छूट जाता है। आंतों की गरमी विशेष रूप से शान्त होती है। मोटापा कम होता है। रक्त शुद्ध हो जाता है। स्नायु-मण्डल को शक्ति प्राप्त होती है तथा हाई ब्लड प्रैशर में लाभ होता है। गरमी के दस्त तथा अन्य अनेक प्रकार के रोग इस स्नान से दूर हो जाते हैं।

हिप-बाथ के बाद

हिप-बाथ लेने के तुरन्त बाद ही शरीर को सूखे तौलिये से पोंछकर शरीर में गरमी लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए कपड़े पहन कर कुछ दूर तक टहलना चाहिए अथवा कोई हल्का-सा व्यायाम करना चाहिए।

जो लोग कमजोर हों, उन्हें हिप-बाथ लेने के बाद कम्बल ओढ़कर बिस्तर पर लेट जाना चाहिए।

जो लोग हिप-बाथ के तुरन्त बाद ही सामान्य-स्नान न करना चाहें, उन्हें एक घण्टे बाद स्नान (सर्वांग-स्नान) कर लेना चाहिए। हिप-बाथ लेने वाले व्यक्ति यदि दो-तीन दिन के अन्तर से एनिमा भी लेते रहें, तो भीतर का मल पर्याप्त मात्रा में बाहर निकल जाता है। परन्तु पहले सप्ताह में तीन बार, दूसरे सप्ताह में दो बार, तीसरे सप्ताह में एक बार और उसके बाद पन्द्रहवें दिन तथा बाद में महीने में एक बार से अधिक एनिमा लेने की आवश्यकता नहीं है। एनिमा लेने की विधि का वर्णन आगे किया गया है।

लिंग-स्नान या सिज़-बाथ

लिंग-स्नान को 'मेहन-स्नान' अथवा 'गुप्तेन्द्रिय का स्नान' भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'सिज-बाथ' (Sitzibath) कहते हैं।

हमारे देश में मूत्र-त्याग करने के बाद गुप्तेन्द्रिय को पानी से धोने की पुरानी प्रथा है। यह स्नान उसी का सुधारा हुआ रूप है। सिज-बाथ का आशय है गुप्तेन्द्रिय के ऊपरी भाग के चमड़े पर ठंडा पानी डालना।

शरीर के समस्त स्नायुओं का केन्द्र लिंग के अग्रभाग में ही होता है, अतः शरीर के किसी भी भाग में बढ़े हुए विजातीय द्रव्यों की गरमी को शान्त करने के लिए यह स्नान अत्यन्त लाभकारी है।

सिज-बाथ लेने की विधि

पहले बताये हुए बाथ-बट में पानो भरकर, उसमें एक चौकी अथवा स्टूल को इस प्रकार रख लें कि पानी उस चौकी की बैठक वाले तख्ते से थोड़ा नीचे ही बना रहे। पानी ५० अंश से ६० अंश डिग्री तक का ठंडा होना चाहिए। मिट्टी के घड़े, हैण्ड पम्प अथवा कुएं का ताजा पानी इसके लिए सबसे अच्छा रहता है। बरफ जैसा ठंडा पानी प्रयोग में नहीं लेना चाहिए।

चौकी के ऊपर बैठकर पांवों को टब के पानी के बाहर रखना चाहिए। यह स्नान एकदम नग्न शरीर होकर ही ठीक प्रकार से लिया जा सकता है, अतः इसे किसी एकान्त

स्थान में लेना चाहिए और शरीर के सब कपड़े उतार देने चाहिए।

सर्वप्रथम पेड़ू तथा लिंग को टब के पानी में अच्छी तरह से धो लें। तत्पश्चात् तर्जनी तथा मध्यमा उंगलियों की सहायता से लिंग को ढकने वाली खाल को आगे की ओर खींचकर लिंग-मुण्ड (सुपारी) को ढंक दें। फिर मल-मल अथवा खद्दर के रूमाल को ठंडे पानी में भिगो-भिगोकर केवल उंगलियों के बीच से आगे निकली हुई त्वचा को धोयें। इस बात का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि धुलाई केवल लिंग की ऊपरी त्वचा के अग्रभाग की होनी चाहिए। सुपारी अथवा किसी अन्य भाग में पानी नहीं लगने देना चाहिए।

लुई कुने के मतानुसार इस स्नान को लेते समय जांघ तथा नितम्बो का भीगना भी आवश्यक है। अतः यदि बाथ-टब में चौकी रखकर तथा उसके ऊपर बैठकर इस स्नान को लिया जाए तो टब में पानी इतना भरना चाहिए कि वह चौकी के बैठने वाले पाटे के तीन अंगुल ऊपर तक बना रहे। ऐसा करने से नितम्बों पानी में डूब जाता है। परन्तु आधुनिक-चिकित्सकों के मतानुसार सिज-बाथ लेते समय कुछ विशेष परिस्थितियों में ही जबकि अधिक ठंड पहुंचानी अभीष्ट हो—तभी नितम्बों को पानी में भीगने देना चाहिए अन्यथा नितम्बों को सूखा ही रखना चाहिए।

यदि नितम्बों को भिगोना अभीष्ट हो, तो खूब गीला अंगौछा अथवा गीली धोती पहन कर भी यह बाथ लिया जा सकता है।

टब के पानी की अपेक्षा लिंग को स्नान कराते समय यदि टब के पास ही किसी तिपाई पर ठंडे जल से भरा हुआ एक दूसरा पात्र भी रख लिया जाय और उसमें से पानी ले-लेकर सिज-बाथ किया जाए तो अधिक सुविधा रहती है।

ठंडे पानी में कपड़ा डुबा-डुबाकर लिंग की ऊपरी त्वचा को लगातार धोने की क्रिया १० से ३० मिनट तक करनी चाहिए। परन्तु विशेष स्थितियों में यह बाथ १ घण्टे तक भी लिया जा सकता है।

स्त्रियों के लिए सिज-बाथ

जिस प्रकार सिज-बाथ में पुरुष अपने लिंग की ऊपरी त्वचा को धोते हैं, उसी प्रकार स्त्रियों को इस विधि से अपने दोनों बाहरी भगोष्ठों को धोना चाहिए। भगोष्ठों को धोते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी की एक बूंद भी योनि के भीतर प्रवेश न करे अन्यथा वांछित लाभ प्राप्त नहीं होगा। अन्य सब बातें पुरुषों के अनुसार ही समझनी चाहिए।

स्त्रियों के लिए यह स्नान विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। परन्तु ऋतुकाल (मासिक-धर्म) के समय स्त्रियों को यह बाथ नहीं लेना चाहिए।

सिज-बाथ कितनी बार लिया जाय

सिज-बाथ सामान्यत: दिन में दो बार लेना चाहिए, परन्तु विशेष परिस्थितियों में इसे तीन बार भी लिया जा सकता है।

सोने से पूर्व इस स्नान को लेना अधिक लाभकारी होता है।

सिज-बाथ लेते समय स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही यह सावधानी रखनी चाहिए कि धुलाई करते समय कपड़े से जोर की रगड़ न मारी जाय। कपड़े में जितना पानी जज्ब हो सके, उतना ही लेकर धोई जाने वाली त्वचा के दोनों ओर गीले कपड़े को धीरे-धीरे फेरते रहना चाहिए तथा बाथ को लेते समय अपने दोनों पांवों को भली-भांति फैला-कर बैठना चाहिए।

सिज-बाथ के लाभ

जिस प्रकार जड़ में पानी देने से सम्पूर्ण वृक्ष हरा-भरा हो जाता है, उसी प्रकार सिज-बाथ लेने से सम्पूर्ण शरीर में शीतलता आ जाती है और शरीर में नवीन शक्ति एवं स्फूर्ति का संचार होता है। यह बाथ स्नायु-मण्डल को एक-दम शान्त कर देता है तथा शरीरस्थ विजातीय द्रव्यों की अस्वाभाविक गरमी को शान्त कर देता है।

अनिद्रा, तेज सिर दर्द, दमा, स्नायुओं का तनाव, हिस्टीरिया, साइटिका, कमर का दर्द, डिप्थीरिया, टांसिलो की सूजन, गले की खराबियां, कैंसर, उन्माद, हैजा, निमोनिया, अस्वाभाविक ऋतु, ऋतुकाल का कष्ट, मासिक-धर्म की खराबियां, प्रमेह, ध्वजभंग आदि अनेक प्रकार के रोगों एवं खराबियों को सिज-बाथ दूर कर देता है।

विभिन्न रोगों में यदि हिप-बाथ के साथ-साथ सिज-बाथ भी लिया जाए तो अधिक लाभ होता है।

जो रोगी बिस्तर से उठ पाने में असमर्थ हों और हिप-बाथ न ले सकते हों, उनके लिए यह बाथ अत्यन्त सरल तथा लाभकारी है, इससे उन्हें नवीन शक्ति प्राप्त होती है।

जो लोग पूर्ण स्वस्थ तथा नीरोग हों, उन्हें सिज-बाथ से कोई लाभ नहीं होता, अतः उन्हें यह बाथ नहीं लेना चाहिए।

सिज-बाथ के बाद

सिज-बाथ लेने के बाद भी शरीर में ठंडक आती है। अतः इस बाथ को लेने के बाद कपड़े पहनकर थोड़ा घूमकर अथवा हल्का-सा व्यायाम करके शरीर में कुछ गरमी ले आनी चाहिए। रोगी अथवा कमजोर व्यक्ति जो घूम-फिर या व्यायाम न कर सकें, उन्हें कम्बल ओढ़कर कुछ देर तक लेटे रहना चाहिए।

गरम जल की भाप के वैज्ञानिक-स्नान (Steam bath)

प्राकृतिक-चिकित्सा विधि में 'वाष्प-स्नान' या स्टीम-बाथ' (Steam bath) का बड़ा महत्व है।

वाष्प-स्नान शरीर के भीतर एकत्रित दूषित विजातीय-द्रव्यों को पसीने के रूप में निकालकर, शरीर को रोग-मुक्त कर देता है।

यदि शरीर में शक्ति हो तो व्यायाम अथवा कुदाली या फावड़ा चलाना जैसे शारीरिक-श्रम के काम करके शरीर से पसीना निकाल देना चाहिए। इस प्रकार के परिश्रम अथवा व्यायाम से जो पसीना निकलता है उसमें गन्दगी का अंश अधिक रहता है और वह उच्च-कोटि का निष्कासन होता है।

परन्तु जो लोग व्यायाम अथवा शारीरिक-परिश्रम करने में अक्षम हों, उन्हें वाष्प-स्नान का सहारा लेना चाहिए।

सर्वांग वाष्प-स्नान की विधि

वाष्प-स्नान की अनेक विधियां हैं। उनमें सर्वांग वाष्प-स्नान की सर्वोत्तम विधि इस प्रकार है—

एक गिलास गरम पानी पीकर किसी खरहरी (बिना बिस्तर बिछी) खाट के ऊपर लेट जायें तथा ऊपर से अपने शरीर को २-३ कम्बलों से ढक लें। कम्बल खाट के दोनों—

तीनों ओर जमीन तक लटकते रहने चाहिए, ताकि वायु उनके भीतर प्रवेश न कर सके।

इसके बाद २-३ अंगीठियों में आग जलाकर उनके ऊपर तीन चौथाई पानी से भरी हुई पतीलियों को ढककर रख दें। यदि पतीलियां न मिल सकें तो पीतल की अथवा लोहे की गहरी थालियों में पानी भरकर रख दें। जब पानी खूब गरम हो जाय और उनमें से भाप निकलने लगे, तब पानी के बर्तनों को चारपाई के नीचे इस क्रम से रख दें कि एक बर्तन रोगी की पीठ, दूसरा कमर एवं तीसरा पांव के घुटनों की सीध में रहे। इसके बाद बर्तनों के ढक्कनों को खोल दें।
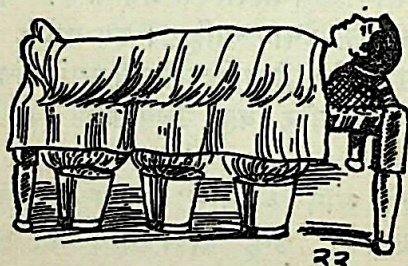
[सर्वांग वाष्प-स्नान]

भाप निकलते हुए खूब गरम पानी को छोटी-छोटी बाल्टियों में भरकर भी चारपाई के नीचे रखा जा सकता है।

जब शरीर से पसीना खूब अच्छी तरह निकल जाय, उस समय बर्तनों को खाट के नीचे से हटाकर, शरीर को ठंडे तौलिये से पोंछ लेना चाहिए।

यदि अधिक गरमी मालूम हो तो ठंडे पानी से नहाकर शरीर को सुखा लेना चाहिए तथा १० मिनट का हिप-बाथ ले लेना चाहिए।

वाष्प-स्नान लेने से पूर्व सिर, मुंह एवं गर्दन को ठंडे पानी से धो लेना आवश्यक है। साथ ही सम्पूर्ण शरीर को भी ठंडे तौलिये से रगड़ लेना चाहिए।

खाट पर लेटते समय सिर को कम्बल के बाहर रखना चाहिए और उसके ऊपर ठंडे पानी में भीगा हुआ तौलिया निचोड़ कर रख देना चाहिए।

वाष्प-स्नान लेते समय बीच-बीच में सिर को ठंडे जल से भिगोते रहना चाहिए।

वाष्प-स्नान लेने वाले व्यक्ति को यदि हृदय-रोग हो अथवा वाष्प-स्नान अधिक देर तक लेना हो तो हृदय के ऊपर भी एक भीगा तौलिया रख देना चाहिए।

वाष्प-स्नान लेने से पूर्व यदि एनीमा लेकर पेट को साफ कर लिया जाए तो वह अधिक अच्छा रहता है।

वाष्प-स्नान की अवधि

शरीर से पसीना निकलना आरंभ हो जाने के बाद शारीरिक-शक्ति और आवश्यकता के अनुसार ५से १५ मिनट तक का वाष्प-स्नान लेना चाहिए।

सामान्यतः एक सप्ताह में दो से अधिक बार वाष्प-स्नान नहीं लेना चाहिए।

वाष्प-स्नान के बाद ठंडे पानी से स्नान अवश्य करना

चाहिए, परन्तु उससे भी पहले सम शीतोष्ण जल से शरीर को पोंछ लेना चाहिए। वाष्प-स्नान के तीन घण्टे बाद केवल हल्के फलाहार अथवा सब्जी आदि का भोजन करना चाहिए।

वाष्प-स्नान के लाभ

वाष्प-स्नान सब प्रकार के वात रोग, त्वचारोग, गठिया, कमर का दर्द, गर्दन का दर्द और गांठों की सूजन में लाभकारी है। यह गुर्दे के रोग, मोटापा, दुर्बलता, मूत्राशय की पथरी, पित्ताशय की पथरी आदि अनेक रोगों को दूर करता है।

व्यायाम न करने वाले तथा गद्दियों पर बैठकर काम करने वाले लोगों को शरद ऋतु में सप्ताह में एक बार, वर्षा ऋतु में पक्ष में एक बार तथा ग्रीष्म ऋतु में मास में एक बार वाष्प-स्नान अवश्य लेना चाहिए। इससे उनके शरीर में स्फूर्ति बनी रहेगी, शरीर के भीतरी विकार दूर होंगे तथा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

बिना पलंग के वाष्प-स्नान

वाष्प-स्नान लेने की जो विधि ऊपर बताई गई है, वह पलंग (खाट) पर लेटकर स्नान लेने की है, परन्तु यदि पलंग उपलब्ध न हो तो उस स्थिति में रोगी को एक बेंत की कुरसी के ऊपर बैठाकर, जिसकी बनावट में छिद्र हों, स्टीम-बाथ दिया जा सकता है।

इसके लिए रोगी को पहले गले से लेकर कुरसी के नीचे तक कम्बल से ढक देना चाहिए। फिर कुरसी के नीचे
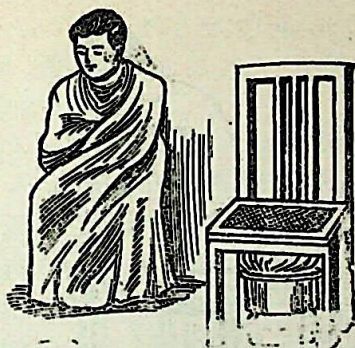
[कुरसी पर बैठकर स्टीम-बाथ]

गरम पानी का एक ऐसा बर्तन रख देना चाहिए, जिसमें से तेज भाप निकल रही हो।

इस प्रकार से स्टीम-बाथ लिये जाने पर भी रोगी के शरीर से पर्याप्त पसीना निकल जाता है।

स्थानीय वाष्प स्नान

सर्वांग वाष्प स्नान की विधियों के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। अनेक अवसरों पर शरीर के किसी विशेष अंग को ही वाष्प-स्नान देने की आवश्यकता होती है। ऐसे स्नान को 'स्थानीय वाष्प-स्नान' कहा जाता है।

स्थानीय वाष्प-स्नान किसी भी सुविधा जनक विधि से लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि नितम्बों या जांघों को भाप देनी हो तो बेंत की बुनाई वाली कुर्सी के नीचे भाप का बर्तन रखकर वाष्प-स्नान लिया जा सकता है।

[स्थानीय वाष्प स्नान १]

पेड़ू या पेट या सिर के भागों को भाप देनी हो तो कुर्सी के ऊपर उल्टो ओर झुक कर बैठा जा सकता है
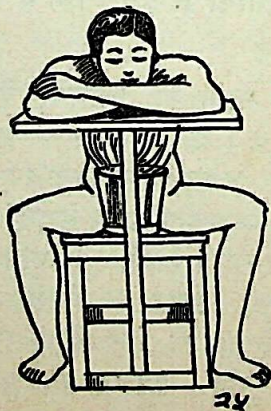
[स्थानीय वाष्प-स्नान २]

और कुर्सी के ऊपर ही दोनों जांघों के बीच वाले खाली हिस्से में किसी छोटे से बर्तन में गरम पानी भरकर, उसकी भाप ली जा सकती है।

यदि फोड़े-फुंसी होने की स्थिति में किसी छोटे अंग को भाप देनी हो तो किसी टोंटीदार बर्तन से भी भाप ली जा सकती है अथवा स्टोव के ऊपर एक पानी का बर्तन भर कर रख दें और उसमें रबड़ की नली का एक सिरा डाल कर, स्वयं कुर्सी पर बैठ जाएं तथा नली के दूसरे सिरे से निकलने वाली भाप को इच्छित अंग पर दें।
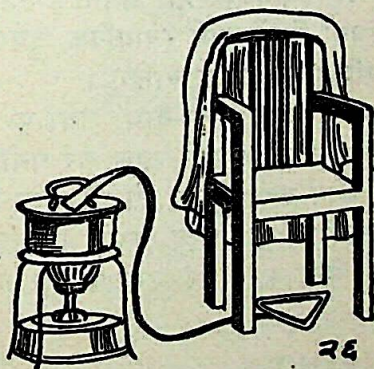
[स्थानीय वाष्प स्नान ३]

वाष्प-स्नान की सावधानियां

यह स्मरणीय है कि किसी भी विधि से वाष्प-स्नान क्यों न लिया जाये, चाहे लेटकर लिया जाये या बैठकर, चाहे सर्वांग वाष्प-स्नान हो या 'स्थानीय वाष्प-स्नान' प्रत्येक स्थिति में, वाष्प-स्नान लेते समय शरीर के सर्वांग

को ढक लेना चाहिए। परन्तु सिर अथवा फोड़े-फुंसी के स्थानों पर भाप देते समय केवल अंग-विशेष को ढक कर भी काम चलाया जा सकता है।

स्थानीय वाष्प-स्नान लेते समय, जब शरीर पर पसीना आ जाए तथा छाती और सिर गरम हो जायें, तब वाष्प-स्नान लेना बन्द करके उन अंगों को सम शीतोष्ण (ताजा) पानी से धो लेना चाहिए। आवश्यकता हो तो इसके बाद हिप-बाथ या सिज-बाथ भी लिया जा सकता है।

जो लोग बहुत कमजोर हों अथवा जिन्हें बहुत कठिन बीमारी हो अथवा जिन्हें पूर्ण स्नायविक दुर्बलता हो, उन्हें स्टीम-बाथ हरगिज नहीं लेना चाहिए।

स्टीम-बाथ के बाद हिप-बाथ तथा पूर्ण स्नान करके कुछ देर तक हवा तथा धूप में टहल कर पसीना निकालना चाहिए। जो लोग बहुत दुर्बल हों और घूम-फिर न सकते हों। उन्हें स्नानोपरान्त गरम कपड़े से शरीर ढककर सो जाना चाहिए। ऐसा करने पर उन्हें पसीना आ जाएगा।

गरमपाद-स्नान
[Hot Foot-Bath]

इस स्नान में केवल पांवों को गरम पानी में डाला जाता है। अनेक प्रकार के दर्द-ज्वर तथा ठंड के रोगों में यह स्नान लाभदायक है। आवश्यकतानुसार इसे प्रतिदिन भी लिया जा सकता है।

इसकी विधि यह है कि गले से लेकर पांवों तक कम्बल अथवा ऊनी चादर से शरीर को ढक कर किसी स्टूल या

कुरसी पर बैठ जायें। साथ ही सिर के ऊपर ठंडे पानी का गीला तौलिया रख लें।

[गरम पाद-स्नान]

इसके बाद गरम पानी को किसी बाल्टी या गहरे चौड़े अन्य बर्तन में भरकर सामने रख लें और उसमें अपने दोनों पांव डाल दें। बर्तन का पानी टखनों से ऊपर तथा घुटनों से नीचे तक रहना चाहिए। पानी अधिक गरम नहीं होना चाहिए। सुहाता गुनगुना पानी इन के लिए सब से अच्छा रहता है। पानी में पांव डालने के बाद किसी लोटे या गिलास द्वारा पानी को पात्र से निकाल-निकाल कर, उसके स्थान पर नया गरम पानी डालते रहना चाहिए। नये गरम पानी को इस तरह से डालना चाहिए कि रोगी के पांव न जलें। पानी इतना गरम भी नहीं होना चाहिए। जिसको रोगी सहन न कर सके।

इस स्नान को लेने से पूर्व एक गिलास गरमपानी पी लेना ठीक रहता है । पीने के पानी में यदि थोड़ा-सा नींबू का रस भी मिला लिया जाए तो और भी अच्छा ।

गरम-पाद स्नान लेते समय यदि सिर तक गरमी पहुंचानी हो तो कम्बल को सिर तक ढक लेना चाहिए, परन्तु सिर के ऊपर गीले तौलिये का रखा रहना फिर भी आवश्यक है । यदि सिर का तौलिया गरम हो जाए तो उसे ठंडे पानी से तर कर देना चाहिए अथवा उसे हटाकर, उसके स्थान पर दूसरा ठंडा तौलिया रख देना चाहिए ।

गरम-पाद स्नान की अवधि

इस स्नान को १५ से ६० मिनट तक लिया जा सकता है । सामान्यतः शरीर पर पसीना चिपचिपाने के समय तक यह स्नान लिया जाता है । गरमियों में कम तथा जाड़ों में अधिक समय तक इस स्नान को ले सकते हैं ।

गरम-पाद स्नान समाप्त हो जाने पर पांवों को गरम पानी की बाल्टी से बाहर निकाल कर, उन्हें ठंडे पानी से धोकर पोंछ लेना चाहिए । इसके साथ ही शीघ्रता पूर्वक ठंडे पानी में भीगे हुए तौलिये द्वारा सम्पूर्ण शरीर को भी पोंछ लेना चाहिए । आवश्यकता अनुभव हो तो गरम-पाद स्नान के बाद ठंडे पानी से स्नान भी किया जा सकता है ।

गरम-पाद स्नान से पूर्व यदि एक बार एनीमा भी ले लिया जाए तो अच्छा रहता है ।

एनीमा लेना

एनीमा लेने से शरीर की भीतरी सफाई हो जाती है तथा आंतों से चिपका हुआ सूखा मल आसानी से बाहर निकल जाता है। एनीमा लेने के बाद शरीर एक दम हल्का हो जाता है। एनीमा लेने पर जिस बड़ी मात्रा में मल बाहर निकलता है, उसे देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। एनीमा शरीर के भीतरी सब विषों को बाहर निकाल देता है।

एनीमा लेने के यन्त्र दो प्रकार के आते हैं—
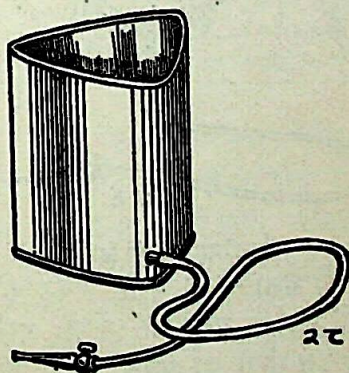
[तामचीनी का एनीमा यन्त्र]

तामचीनी का बना हुआ एनीमा यन्त्र—यह सर्वत्र प्रचलित है। यह कई साइजों में आता है, जिनमें १ पौण्ड से लेकर ५ पौण्ड तक पानी आ जाता है। इस डिब्बे के बाहरी भाग में एक टोंटी सी निकली रहती है जिसमें रबड़ की नली फिट कर दी जाती है। नली के दूसरे सिरे पर

एक पेचदार टोंटी फिट की जाती है। इसे पेच घुमाकर खोला या बन्द किया जा सकता है। टोंटी में प्रायः ४ इंच लंबी एक खोखली नली लगाई जाती है। इस नली को गुदा के भीतर चढ़ा दिया जाता है।
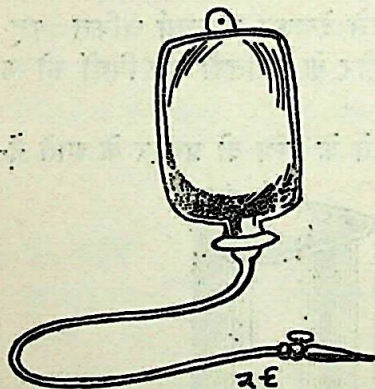
[एनीमा लेने की विधियां[

(२) रबड़ की थैली—यह थैली रबड़ की बनी होती है और इसमें भी पूर्वोक्त यन्त्र की तरह नली टोंटी आदि लगी रहती है। इस थैली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसे सफर में भी अपने साथ रक्खा जा सकता है। यह भी छोटी बड़ी कई साइजों में आती है।

एनीमा लेने की विधियां

एनीमा (१) चित लेटकर, (२) कुहनी और घुटनों के बल उल्टे लेटकर, (३) नितम्बों को ऊपर उठाकर तथा (४) करवट से लेटकर लिया जा सकता है।

नीचे दिये गये चित्रों में एनीमा लेने की इन चारों विधियों को प्रदर्शित किया गया है।
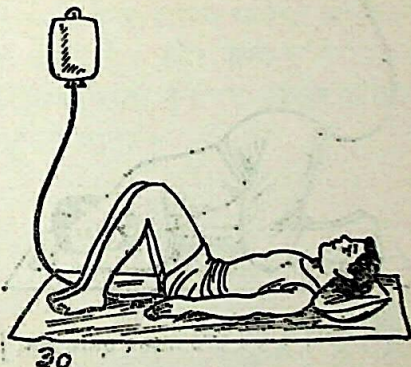
[चित लेटकर एनीमा लेना]

एनीमा लेने के लिए एनीमा यन्त्र में पानी भरकर उसे ३-४ फुट की ऊंचाई पर टांग देना चाहिए। पात्र को इससे अधिक ऊंचाई पर टांगने से पानी बहुत तेजी के साथ भीतर जाता है। जिसके कारण पाखाने की हाजत बहुत जल्दी आती है और थोड़ी देर तक रुकपाना भी कठिन होता है।

चित लेटकर एनीमा लेना सबके लिए सुविधा जनक रहता है।

उल्टे लेटकर एनीमा केवल उन्हीं लोगों को लेना चाहिए जो सशक्त हो। दुर्बल, रोगी तथा लम्बे उपवास करने वाले लोगों को इस प्रकार से एनीमा नहीं लेना चाहिए।

नितम्बों को ऊपर उठाकर एनीमा लेने से शरीर के
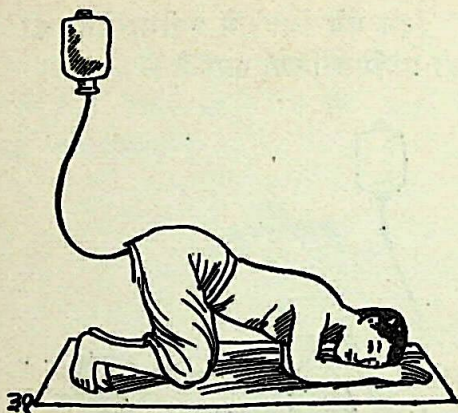
[कुहनी और घुटनों के बल उल्टे लेटकर एनीमा लेना]

भीतरी भाग की सफाई बहुत अच्छी तरह से हो जाती है। परन्तु इस प्रकार से भी केवल सशक्त व्यक्तियों को ही एनीमा लेना चाहिए।
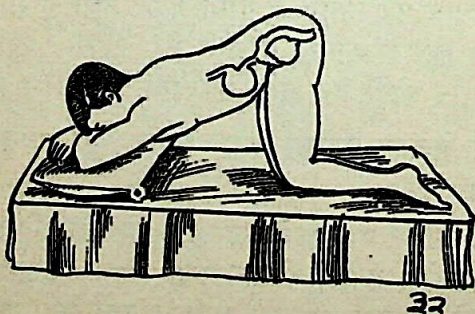
[नितम्बों को ऊपर उठाकर एनीमा लेना]

जो लोग उपर्युक्त तीनों प्रकार से एनीमा लेने में किसी कारण असमर्थ हों, वे करवट से लेटकर एनीमा ले सकते हैं। इस प्रकार एनीमा लेते समय पानी को बहुतधीरे धीरे भीतर जाने देना चाहिए अन्यथा बहुत जल्दी पाखाने की हाजत लग आती है। और कभी-कभी उसको रोक पाना बहुत ही कठिन हो जाता है। इस कारण भीतर तक पूरा पानी भी नहीं पहुंचने पाता।
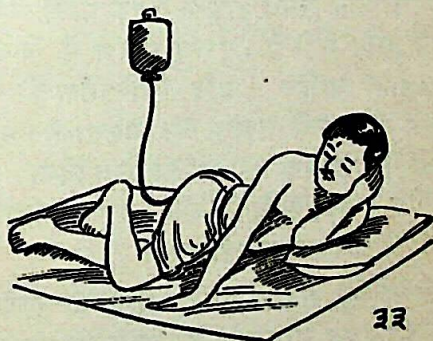
करवट से लेटकर एनीमा लेना

एनीमा के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञातव्य

(१) एनीमा लेने के लिए पानी का गुनगुना होना आवश्यक है। पानी इतना ही गुनगुना होना चाहिए जिसे आसानी से सहन किया जा सके। गर्मी के दस्तों में ताजे पानी का भी एनीमा लिया जा सकता है।

(२) एनीमा के पानी में सवा सेर पानी के लिए १ तोला के हिसाब से नींबू का रस छान कर मिला देना

चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए नींबू का बीज या रेशा एनीमा के पानी में न गिरे।

३ एनीमा लेने से पूर्व टौंटी के नल को खोल कर थोड़ा सा पानी निकाल देना चाहिए। तत्पश्चात् गुदा में चढ़ाई जाने वाली नली पर एक-दो बूंद तैल अथवा वैसलीन चुपड़ देनी चाहिए। इससे नली चिकनी होकर आसानी से भीतर चढ़ जाती है।

४ एनीमा लेते समय ढाई सेर तक पानी भीतर चढ़ा लेने में कोई हानि नहीं है। परन्तु प्रारंभ में केवल डेढ़ सेर पानी ही चढ़ाना चाहिए। यदि चिकित्सक की सम्मति हो तो पांच सेर तक पानी चढ़ाया जा सकता है। परन्तु इतना अधिक पानी चिकित्सक की सलाह लिये बिना हर्गिज नहीं चढ़ाना चाहिए। यदि अधिक दिनों तक एनीमा लेना हो तो थोड़ा पानी ही चढ़ाना चाहिए।

५ एनीमा लेते समय यदि पाखाने की हाजत जोर से लग आये और वह सामान्य प्रयत्न करने पर न रुके तो पाखाना करने के लिए बैठ जाना चाहिए, परन्तु यदि ऐसी बात न हो तो एनीमा लेने के चार-पांच मिन्ट बाद तक दांई बांई ओर करवट बदलकर, तब पाखाने को जाना चाहिए। ऐसा करने से भीतरी मल अधिक उखड़ कर पानी में घुल जाता है।

६ एनीमा सदैव ऐसे स्थान पर ही लेना चाहिए। जहां से शौचालय समीप ही हो, ताकि आवश्यकता होने पर तुरन्त उसका प्रयोग किया जा सके।

७ यदि एनीमा लगाते समय बीच में ही पाखाने की हाजत हो जाए और यह अनुभव हो कि अभी पूरी सफाई नहीं हुई है तो पाखाने की हाजत रफा कर आने के बाद दुबारा एनीमा लगा लेना चाहिए।

८ एनीमा लेने के बाद शौचालय में २० से ३० मिनट तक बैठना चाहिए। इतने समय में पेट का सब पानी मल सहित एक, दो या अधिक बार में हाजत आकर बाहर निकल जाता है। पानी को बाहर निकालने के लिए गुदा पर जोर नहीं डालना चाहिए। ऐसा करने पर पानी और भी अधिक देर में निकलता है।

९ यदि एनीमा लेने के बाद पूरा पानी पाखाने के रास्ते न निकले तो चिन्तित नहीं होना चाहिए वह पानी मूत्र-मार्ग से निकल जायेगा अथवा बाद में हाजत आने पर निकल जायेगा।

१० एनीमा लेने से पूर्व एक गिलास गुनगुना या ताजा पानी पी लेना अच्छा रहता है।

११ प्रातः काल स्वाभाविक रूप से शौच जाने के बाद । एनीमा लेना चाहिए। इसी प्रकार सन्ध्या या रात्रि के समय भी स्वाभाविक शौचजाने के बाद ही एनीमा लेना चाहिए। रात्रि को सोने से पूर्व भी एनीमा लिया जा सकता है। एनीमा लेने के बाद सोने से नींद गहरी और अच्छी आती है।

१२ भोजन करने के तुरन्त बाद एनीमा नहीं लेना चाहिए। परन्तु यदि खाना खाने के तुरन्त बाद ही पेट में

कोई तकलीफ हो जाए और मल को निकालना आवश्यक प्रतीत हो तो उस स्थिति में भोजन के बाद भी एनीमा लिया जा सकता है।

१३ एनीमा से निपटने के तुरन्त बाद स्नान किया जा सकता है। ठण्डे पानी से स्नान करना अधिक अच्छा रहता है, परन्तु आवश्यकता हो तो गरम पानी से भी स्नान करने में कोई हानि नहीं होती।

१४ चार मास से अधिक गर्भ वाली स्त्री को डाक्टर की सलाह के बिना एनीमा नहीं लेना चाहिए।

१५ एनीमा लेने में डरने की आवश्यकता नहीं है। यह बड़ी सरल प्रक्रिया है और इसमें किसी प्रकार की हानि या तकलीफ नहीं होती।

१६ एनीमा निरन्तर लेने की आदत भी नहीं डालनी चाहिए। सप्ताह में एक या दो बार एनीमा लेना ही पर्याप्त होता है। आवश्यकता अनुभव होने पर एनीमा प्रति दिन भी लिया जा सकता है पूर्ण स्वस्थ्यमनुष्यों को महीने में १ या २ बार एनीमा लेते रहना चाहिए। इससे आंतों में मल का संचय नहीं हो पाएगा। कब्ज दूर होगा तथा शरीर स्वस्थ्य हल्का एवं प्रसन्न बना रहेगा।

——

पानी के अन्य प्रयोग

पानी के अन्य चिकित्सकीय प्रयोगों के सम्बन्ध में नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिए ।

भीगी लपेट

शरीर के किसी भाग में जब गंदगी की मात्रा बढ़कर वहां की गर्मी को बढ़ा दे, तो उस समय उस स्थान पर ठंडे पानी की पट्टी बांध देने से गर्मी खिंच आती है और वहां की गन्दगी त्वचा के जरिये बाहर निकल जाती है।

[भीगी लपेट]

भीगी लपेट के लिए रोगी-अंग पर फलालेन अथवा खद्दर के टुकड़े को ठंडें पानी में भिगोकर रख देना चाहिए, फिर उसके ऊपर किसी ऊनी कपड़े की तीन-चार लपेट देकर उसे सेफ्टी पिन से टांक देना चाहिए । ठंडे पानी की पट्टी के ऊपर ऊनी कपड़े की गर्मी के कारण भाप तैयार होती

है और उस अंग से पसीना निकलने लगता है, जिसके कारण गन्दा विषैला माद्दा बाहर निकल जाता है।

इस भीगी लपेट को छाती, कमर, पेट, गला, बाजू जांघ, टांग आदि किसी भी स्थान पर दिया जा सकता है
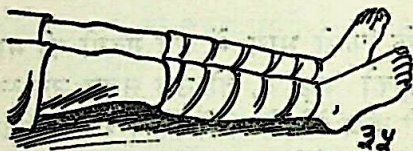
[पांवों पर भीगी लपेट]

इस लपेट के देने पर भी यदि उस अंग पर पसीना न आये तो यह समझना चाहिए कि गन्दे माद्दे की मात्रा अधिक है। ऐसी स्थिति में उस रोगी के अंग के आस-पास गरम पानी की बोतलें रख कर अधिक गर्मी पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

भीगी लपेट का उपयोग

कमर के दर्द, मसाने का दर्द, छाती का दर्द, गले के जख्म डिप्थीरिया आदि रोगों में रोगी स्थानों पर इस लपेट का उपयोग करना चाहिए। इसके व्यवहार से रोगी स्थान को पूर्ण विश्राम मिलता है तथा रोगी का रोग दूर हो जाता है।

गीली चादर की लपेट
(Wet sheet pack)

जिन रोगियों को किसी कारण वाष्प-स्नान न दिया जा सकता हो, वहां गीली चादर की लपेट देने से भी भाप

स्नान के समान ही लाभ होता है। इस क्रिया में ठंडी चादर से लपेट देकर ऊपर से सूखी चादर लपेटी जाती है।

इसके लिए एक बड़ा दोहरा कम्बल, एक इकहरा कम्बल, एक २५-३० इंच लम्बा और १ गज चौड़ा मलमल का कपड़ा, २ बड़ी चादरें, जिनमें एक पतली तथा एक मोटी हो, १ तौलिया तथा ६०° से ७०° फा० हा० पानी (२-३ गैलन की) आवश्यकता होती है।

गीली चादर लपेट की विधि

सर्वप्रथम मोटी चादर को लम्बाई में चौपर्ता देकर पलंग के आर-पार सिरहाने के समीप तक फैला दें। चादर के ऊपरी भाग को तकिये से ढक दें।

फिर दोहरे कम्बल को पलंग पर इस प्रकार फैला दें कि वह पलंग के आर-पार हो जाये और दोनों ओर लगभग २-२ फुट लटकता रहे। उसका ऊपरी भाग सूखी चादर से दो इंच नीचे रहना चाहिए।

फिर मलमल की चादर को ठंडे पानी में भिगोकर भली भांति निचोड़ लें, जिससे कि वह सूखा सा प्रतीत हो। तत्पश्चात् उस चादर को कम्बल के ऊपर फैला दें। कम्बल के ऊपरी कोने से चादर का ऊपरी कोना १-२ इंच नीचे रहना चाहिए तथा चादर के ऊपर चादर के समान ही मलमल के टुकड़े को भी भिगोकर तथा निचोड़ कर, ऊपरी भाग में, जहां धड़ पड़े, बिछा देना चाहिए।

इसके बाद रोगी को उस पलंग पर लिटा देना चाहिए। उसका ऊपरी कोना कंधे से ३ इंच ऊंचा होना चाहिए।

फिर रोगी अपने दोनों हाथों को कंधे से ऊपर उठा

ले और परिचारक शरीर को ढकने के लिए पहले मलमल के टुकड़े को धड़ से लपेट दे और उसे एक ओर से खींचकर, बगल से कसकर सटा दें।
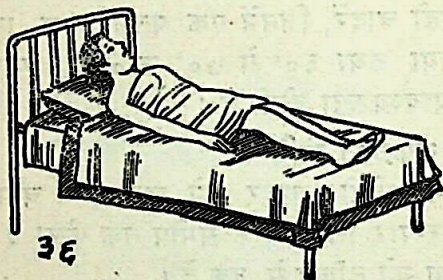
[गीली चादर लपेट की प्रथमावस्था]

इसके बाद धड़ के नीचे चादर को पांवों में खूब लपेट दें। फिर रोगी हाथ गिरा ले तथा इसी प्रकार दूसरी ओर भी किया जाए।
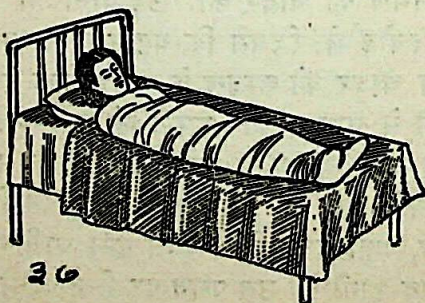
[गीली चादर लपेट की द्वितीयावस्था]

इसके बाद परिचारक कम्बल के बड़े कोने को पकड़

कर उसे इस प्रकार खींचे कि रोगी का पूरा शरीर कस जाए। इसके बाद दूसरे कम्बल तथा सूखी चादर को रोगी की गर्दन की तरफ लपेट देना चाहिए।
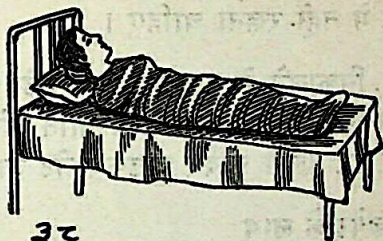
[गीली चादर लपेट की तृतीयावस्था]

अतिरिक्त गर्मी के लिए रोगी के ऊपर और भी ऊनी कम्बल डालकर उसके कंधे तथा पैरों को लपेट दिया जाता है।

प्रारंभ में २-३ कम्बल डालने चाहिएं। उसके बाद आवश्यकतानुसार १ या २ कम्बल हटा देने चाहिएं।

इस लपेट में रोगी को पहले तो ठंडक लगने से बड़ी असुविधा लगती है, परन्तु फिर गरमी आ जाने पर सुख का अनुभव होने लगता है।

अत्यधिक दुर्बल तथा स्नायु दौर्बल्य के रोगियों को अपने दोनों हाथ गीली चादर से बाहर रखने चाहिएं, परन्तु ठंडक से बचने के लिए उन्हें कम्बल के भीतर कर लेना चाहिए।

गीली चादर लपेट की अवधि

इस लपेट में रोगी को तब तक रहने देना चाहिए,

जब तक कि उसे अच्छी तरह से पसीना न आजाए अथवा उसे परेशानी का अनुभव न हो। इसकी अवधि १० से ६० मिनट तक की है, परन्तु इससे अधिक समय तक रोगी को इस लपेट में नहीं रखना चाहिए।

लपेट से निकालने के बाद रोगी को ठंडे पानी में भीगे हुए तौलिये से सम्पूर्ण शरीर को भली-भांति पोंछकर, किसी दूसरे बिस्तर पर हल्की चादर ओढ़कर लेट जाना चाहिए।

गीली चादर लपेट के लाभ

चेचक, खसरा, पीलिया, पित्त, उपदंश, मोटापा, कालाजार, मलेरिया आदि रोगों में यह लपेट बहुत लाभकारी होती है। विशेषकर पुराने रोगों में अधिक प्रभाव प्रदर्शित करती है, परन्तु हृदय के रोगियों को यह लपेट वर्जित है। इस लपेट का प्रयोग सदैव प्राकृतिक-चिकित्सक की सम्मति लेकर ही करना चाहिए।

कमर की गीली पट्टी
(Wet girdeed)

इस पट्टी को स्तन वृत्त रेखा से उरुसन्धि तक बांधा जाता है। इसके लिए ८-९ इंच चौड़ा तथा ४-६ हाथ लम्बा मलमल का इतना बड़ा टुकड़ा लेना चाहिए, जिसे कमर में तीन बार अच्छी तरह लपेटा जा सके। इसके अतिरिक्त ६-१० इंच चौड़ा ऊनी अथवा फलालेन का इतना लम्बा टुकड़ा लेना चाहिए, जिसे ऊपर से दो बार लपेटा जा सके।

इस पट्टी को देने की विधि यह है—

[प्रथमावस्था]

सर्वप्रथम मलमल के कपड़े को ठंडे पानी में भिगोकर इतना निचोड़ लें कि उसमें से पानी न टपके। तत्पश्चात् उस कपड़े को कमर के चारों ओर तीन बार कस कर लपेट दें।
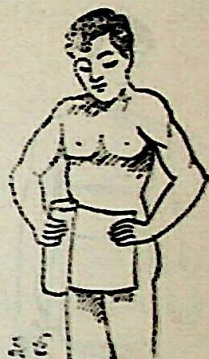
[द्वितीयावस्था]

इसके बाद उस गीली पट्टी के ऊपर ऊनी अथवा फलालेन के कपड़े को दो बार लपेट कर टांक दें, अथवा सेफ्टी पिन लगा दें ताकि पट्टी अपने स्थान पर बनी रहे।

कमर की गीली पट्टी के लाभ

४१
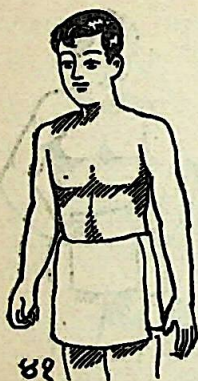
इस पट्टी का प्रभाव रक्त-वाहिनी पर पड़ने वाले अधिक तनाव को दूर करने वाला होता है।

इस पट्टी से पहले पेट पर ठंडक लगती है, फिर बाद में पसीना निकलता है। यदि त्वचा के निष्क्रिय होने के कारण पसीना न भी निकले तो भी वह स्थान तो गरम हो ही जाता है।

[तृतीयावस्था]

यह पट्टी अजीर्ण, मंदाग्नि, कब्ज, गुर्दा, प्लीहा, यकृत एवं पीठ के विकारों पर अत्यन्त उपयोगी है। अनिद्रा रोग में इसे सोते समय लेना चाहिए और बीच में एक बार बदल भी देना चाहिए।

यह गीली पट्टी उसी समय तक उपयोगी रहती है, जब तक वह नम बनी रहे। जब वह सूख जाए तो उसे हटाकर उस स्थान को रगड़ देना चाहिए।

इस पट्टी के कारण बांधने के स्थान पर दाद जैसा अथवा दर्द हो जाता है। प्रयुक्त स्थान पर कभी-कभी फफोले भी निकल आते हैं। अतः जिस स्थान पर इस पट्टी का प्रयोग किया जाए, वहां प्रतिदिन नीम के गरम पानी से धोकर नारियल का तेल लगा देना चाहिए।

आवश्यकतानुसार इस पट्टी का प्रयोग चाहे जितने दिनों तक किया जाता है, परन्तु इसका आदी नहीं बन जाना चाहिए।

ठंडी गीली चादर की लपेट
(Cooling W. S. P.)

ज्वर को उतारने के लिए ठंडी गीली चादर का प्रयोग किया जाता है।

इसके लिए एक सूती चादर को ठंडे पानी में भिगोकर तथा निचोड़कर रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर लपेट देना चाहिए और उसे बैठा या लिटा देना चाहिए। जब चादर गरम हो जाए, तब इसी क्रिया को पुनः दुहराना चाहिए।

[ठंडी गीली चादर की लपेट]

अधिक ठंडक पहुंचानी हो तो ५०°-६०° फा० हा० पानी का व्यवहार करना चाहिए। यदि ताप बहुत अधिक

हो और त्वचा बहुत गरम हो तो एक के बदले दो चादरों का अथवा बदले में एक मोटी चादर का इस्तेमाल किया जा सकता है ।

गीली चादर के ऊपर रोगी को दो मोटे कम्बलों से ढक देना चाहिए । गर्दन आदि को भली-भांति बन्द कर देना चाहिए, ताकि उसे ठंड न लगे और निमोनिया अथवा ब्रोंकाइटिस हो जाने की संभावना न रहे ।

प्रत्येक नई चादर के प्रयोग के बाद तथा कम्बल लपेटने से कुछ सैकिंड पूर्व शरीर को रगड़ना चाहिए। चादर बदलने की क्रिया की पूर्ति ऊपर का ओढ़ना हटाकर चादर को ठंडे पानी से रगड़कर भी की जा सकती है ।

यदि ठंड अधिक हो और रोगी के दांत किटकिटाते हों तो कम्बल को खोलकर, कम्बल एवं चादर के बीच खूब रगड़ना चाहिए । जब ठंड दूर हो जाए, तब कम्बल से ढक देना चाहिए ।

ठंडी गीली चादर की लपेट के लाभ

यह लपेट सब प्रकार के ज्वर, विशेषकर टाइफाइड, टाइफस, इन्फ्लुऐंजा, मलेरिया तथा ब्रोंकाइटिस आदि में हितकर रहती है ।

पसीना निकालने की लपेट

यदि रोगी के शरीर में से अधिक पसीना निकालने की आवश्यकता हो तो ठंडी गीली चादर की लपेट की सम्पूर्ण विधि के अतिरिक्त उसे और अधिक उढ़ा देना चाहिए ।

[पसीना निकालने की लपेट]

रोगी के बगल एवं पांव के पास गरम पानी की थैली रख देना अधिक अच्छा रहता है। लपेट में जाने से पूर्व एक गिलास गरम पानी भी पी लेना चाहिए तथा लपेट के दौरान भी २-३. गिलास गरम पानी पीना चाहिए। यदि इससे भी पसीना न निकले तो ४-५ मिनट का १०४°-११०° फा० हा० का उष्ण स्नान लेना चाहिए। उष्ण-स्नान एवं गीली चादर की लपेट में तनिक भी देर नहीं करनी चाहिए। उष्ण-स्नान के बदले ऊनी कम्बल की लपेट का भी प्रयोग किया जा सकता है।

रीढ़ का धार-स्नान

रीढ़ की हड्डी के ऊपर पानी के पाइप की अनवरत धार डालने और अन्त में सम्पूर्ण बदन को मलकर स्नान

करने से स्नायविक एवं हृदय शक्ति का विकास होता है। यह स्नान स्वप्न दोष में भी अत्यन्त गुणकारी है।
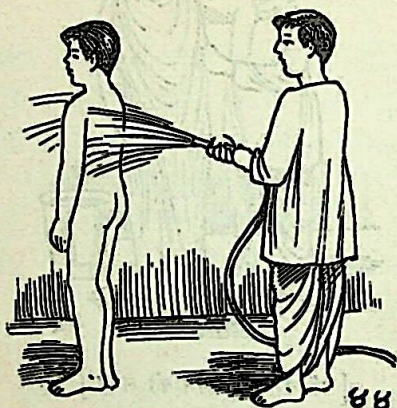
[रीढ़ का धार-स्नान]

इस स्नान को नल की धारा के नीचे बैठकर भी लिया जा सकता है, परन्तु जैसा कि ऊपर के चित्र में प्रदर्शित किया गया है, इस विधि से स्नान लेना अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। यह स्नान ३ से ५ मिनट तक लेना चाहिए।

फव्वारा-स्नान

स्नानघर में फव्वारा लगवाकर उसके नीचे स्नान करना अत्यन्त लाभकारी है।

इस स्नान से स्नायु सशक्त होते हैं तथा त्वचा सुन्दर एवं सतेज होती है। इससे रक्त का संचार उन्नत होता है, हृदय में आनन्द का उद्‍भव होता है, पाचन शक्ति तीव्र

[फव्वारा-स्नान]

होती है तथा आत्मसात एवं प्रचूषण क्रिया उन्नत होती है। शराब के नशे को उतारने के लिए यह स्नान अत्यन्त उपयोगी है।

ठंडे तौलिया द्वारा घर्षण-स्नान

इस क्रिया में तौलिये को भिगोकर निचोड़ लेना चाहिए, फिर वह शरीर के जितने भाग पर आ सके, उतने भाग पर उसे फैलाकर, दोनों हाथों से शरीर को धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए। प्रत्येक अवयव को भली-भांति रगड़ना आवश्यक है। जब तौलिया गरम हो जाए, तब उसे पुनः पानी में भिगोकर तथा निचोड़ कर यही क्रिया करनी चाहिए।

यह घर्षण स्नान शरीर के तापक्रम को घटाता है, हृदय को शक्ति देता है तथा जीवन-शक्ति को बढ़ाता है। इस घर्षण स्नान से शरीर के रोम रूपों के सभी छिद्र खुल

[तौलिया द्वारा घर्षण-स्नान].

जाते हैं। फलस्वरूप शरीर एकदम हल्का प्रतीत होने लगता है तथा शरीर के भीतर रक्त-संचार में नियमितता आ जाती है।

ठंडी मालिश
(Cold friction)

एक सामान्य अंगोछे या मारकीन के टुकड़े को ठंडे पानी में भिगोकर थोड़ा-सा निचोड़ लें। फिर उसे दायें हाथ में लपेट लें और रोगी को पलंग पर लिटाकर, उसके सम्पूर्ण शरीर को गर्दन तक कम्बल से ढक दें। तत्पश्चात् रोगी के मुंह, गर्दन तथा सिर को ठंडे पानी से धोकर पूर्वोक्त वस्त्र द्वारा कम्बल के भीतर हाथ डालकर उसके शरीर के विविध अंगों की मालिश करना आरंभ करें।

एक स्थान की मालिश हो जाने पर उस स्थान को

४७
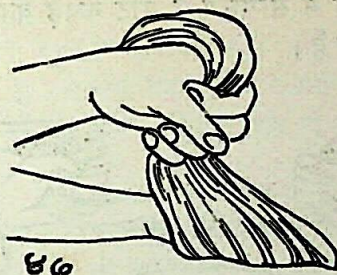
[ठंडी पालिश]

भला-भांति ढकने के बाद दूसरे अंग की मालिश करना चाहिए।

मालिश का आरंभ छाती से करना चाहिए। तत्पश्चात् पेट, हाथ, पीठ, दोनों टांग तथा अन्य अंगों की मालिश करनी चाहिए। इस मालिश के समय यदि रोगी को ठंड का अनुभव हो तो उसके पांवों के ऊपर गरम पानी से भरी हुई बोतलें रख देनी चाहिए।

इस मालिश से त्वचा साफ तथा सुन्दर हो जाती है। शरीर के किसी भी विकृत-अंग पर इस मालिश को किया जा सकता है। हृदय-रोगों पर भी यह बहुत लाभदायक है। मृगी-रोग में इस मालिश से बहुत लाभ होता है।

गरम सेक
(Fomentation)

शरीर के किसी विशेष स्थान पर गर्मी पहुंचाने के लिए गरम सेक की क्रिया बहुत ही लाभदायक होतीहै। इसके लिए कम्बल के टुकड़े अथवा फलालेन के टुकड़े का प्रयोग करना

चाहिए । अभाव में सामान्य से मोटे कपड़े का व्यवहार भी किया जा सकता है।
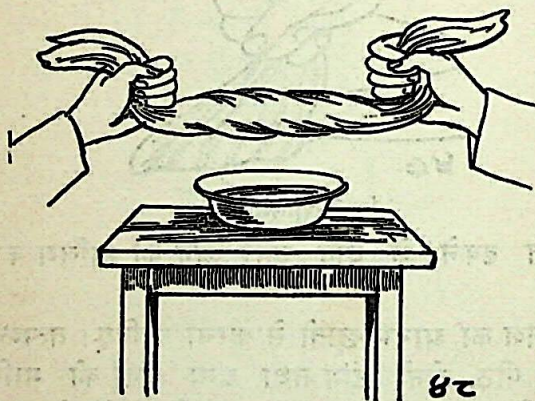
गरम सेक

कपड़े को गरम पानी में डुबाकर भलीभांति निचोड़ लेना चाहिए। तत्पश्चात् जिस स्थान पर सेक देना हो, वहां एक सूखा फलालेन का टुकड़ा अथवा तौलिया बिछा कर, उसके ऊपर सेंक देना चाहिए। इस प्रकार से सेक देते समय यदि रोगी का सिर गरम हो जाए तो उसे ठंडे पानी से धोकर तौलिया से पोंछ देना चाहिए अथवा सिर पर गीला तौलिया लपेटे रखना चाहिए।

गरम सेक देने के बाद जिस स्थान पर सेक दिया गया हो, वहां फलालेन के टुकड़े को ठंडे पानी में भिगोकर आधा मिनट से एक मिनट तक के लिए रख देना चाहिए।

तत्पश्चात् ठंडे कपड़े को हटाकर उस स्थान को सूखे कपड़े से ढक देना चाहिए ।

यह सेंक उन सभी स्थानों पर जहां दर्द या सूजन हो दिया जा सकता है । अजीर्ण तथा कोष्ठ बद्धता में पाकस्थली पर इस सेंक को देने से पाचन-क्रिया ठीक हो जाती है ।

गीली पट्टी

यदि रोगी अधिक कमजोर हो और खड़े होकर पट्टी लेने में असमर्थ हो तो उसे चारपाई पर लिटाये रखकर ही पट्टी की लपेट दी जा सकती है ।

इसके लिए स्वच्छ कपड़े का एक ऐसा टुकड़ा लेना चाहिए जो रोगी की कमर के डेढ़ चक्कर के योग्य हो । पट्टी के दोनों किनारे नीचे प्रदर्शित किये चित्र के अनुसार होने चाहिएं ।
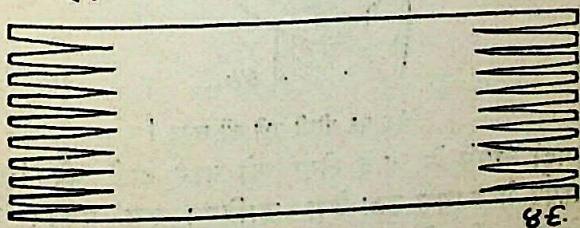
[लपेट के लिए पट्टी]

इस पट्टी को ठंडे पानी में भिगोने के बाद पलंग पर बिछा दें फिर उसके ऊपर रोगी को लिटाकर पट्टी को पहले बांई ओर से दांई ओर को लपेट दें । तत्पश्चात् उसके ऊपर कम्बल की पट्टी लपेट दें । फिर पट्टी के कटे हुए किनारों

के सिरों पर गांठे लगादें । यदि पट्टी के किनारे कटे हुए न हों और उसमें गांठ न लगाई जा सके तो उस स्थिति में सेफ्टी पिन लगा देनी चाहिए।

यदि रोगी खड़ा होने योग्य हो तो नीचे प्रदर्शित चित्र के अनुसार उसके पेट पर पट्टी को उपर्युक्त विधि से बांध जा सकता है।
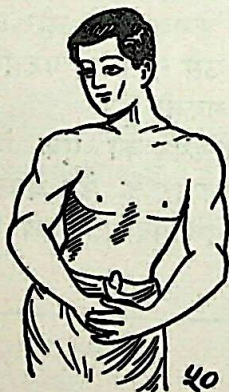
[पेट पर गीली पट्टी की लपेट]

पट्टी बांधने के बाद रोगी को चार पाई पर लिटा कर ऊपर से कम्बल उढ़ा देना चाहिए। इस प्रकार की पट्टियों को शरीर के अन्य अंगों पर भी लपेटा जा सकता है।

गीली मिट्टी की पट्टी

शरीर के किसी भाग के अग्नि से जलजाने पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधना बहुत लाभकारी होता है। इसके

अतिरिक्त घाव, रक्त स्राव फोड़ा फुंसी आदि पर भी गीली मिट्टी की पट्टी लाभकारी सिद्ध होती है।
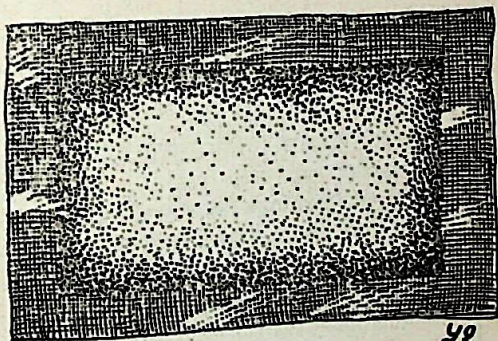
[गीली मिट्टी की पट्टी]

बलुई-चिकनी मिट्टी को ठंडे पानी में भिगोकर रोगी स्थान पर रख कर, ऊपर से स्वच्छ कपड़े की पट्टी बांध देनी चाहिए ताकि वह अपने स्थान से न हट सके।

मिट्टी ज्यों ही सूख जाये, उसके स्थान पर दूसरी मिट्टी रख देनी चाहिए। मिट्टी की पट्टी बांधने की विस्तृत विधि तथा मिट्टी के गुण एवं उपयोग सम्बन्धी विभिन्न जानकारियों के लिए हमारी 'मिट्टी के गुण तथा उपयोग' पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

॥ समाप्त ॥

१२८७०/टैक्नीकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित

मेकेनिकल ट्रेड पर हमारे अन्यान्य प्रकाशन

मशीनिष्ट गाइड पृष्ठ ६६४—सोमनाथ भार्गव १६.५०
कास्ट आयरन वैल्डिंग—प्रो० नरेन्द्रनाथ ४.५०
जनरल मैकेनिक गाइड—कृष्णानन्द शर्मा १२.००
वर्कशाप प्रैक्टिस—कृष्णानन्द शर्मा १२.००
मशीन शाप प्रैक्टिस—कृष्णानन्द-आनन्द स्वरूप २०.२५
फिटर मैकेनिक—श्रीराम वर्मा ६.००
खराद शिक्षा (टर्नर गाइड)—बसंतकुमार जोशी ४.५०
वर्कशाप गाइड (फिटर ट्रेनिंग)—बसंतकुमार जोशी ... ४.५०
मिलिंग मशीन—कालीचरण ८.२५
मशीन शाप ट्रेनिंग—कालीचरण १०.००
शीट मैटल वर्क—कालीचरण ८.२५
लेथ वर्क—कालीचरण ६.७५
फाउन्ड्री प्रैक्टिस—जयनारायण शर्मा ८.२५
फाउन्ड्री वर्क—कालीचरण ४.५०
माडर्न वर्कशाप टैक्नालोजी—कालीचरण २५.५०
मशीन वुड वर्किंग—कालीचरण ६.००
जन्त्री पै० चोब (गोल लकड़ी) मी० में—राजेन्द्रकुमार ३.००
जन्त्री पैमा० चोब (चिरी लकड़ी) मी० में—राजेन्द्रकुमार ३.००
ब्लैकस्मिथी (लोहार) I.T.I. के सिलेबस—कालीचरण ४.५०
प्लम्बिंग और सेनीटेशन—कालीचरन ६.००
टयूबवैल व पम्पिंग गाइड—पुष्पनाथ पंगोत्रा ४.५०
सर्वे इन्जिनियरिंग बुक—रामअवतार वीर १२.००
खराद तथा वर्कशाप ज्ञान—बसन्तकुमार जोशी ६.००
पैटर्न मेकिंग—नरेन्द्रनाथ ८.२५
माडर्न फाउण्ड्री एण्ड मोल्डिंग प्रैक्टिस—ओ०पी० महाजन १२.००

देहाती पुस्तक भण्डार
चावड़ी बाजार, दिल्ली—६

इण्डस्ट्रियल पुस्तक

लघु उद्योग

१. स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज—कालीचरन १८.००
२. स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज इंगलिश—कालीचरन १४.००
३. स्माल स्केल कैमीकल इण्डस्ट्रीज—पी० एस० साथी ... २५.५०
४. धन कमाने की २५० स्कीमें—सुरेशचन्द दुवे १२.००
५. १००१ मनीमेकिंग फारमूलरी—सुरेशचन्द दुवे १५.००
६. व्यापार दस्तकारी (हैंड बुक काटेज इण्डस्ट्री)—कालीचरन ४.५०
७. स्माल मैन्यूफैक्चरर गाइड इंगलिश—कालीचरन ८.२५
८. स्माल मैन्यूफैक्चरर गाइड हिन्दी—कालीचरन ८.२५
९. प्रोफेटेबल होम इण्डस्ट्रीज—सुरेशचन्द दुवे ८.२५
१०. सत्य व्यापार लक्ष्मी भंडार—सुरेशचन्द दुवे ४.५०

साबुन तेल आदि

११. सोप एण्ड सोप पावडर पृष्ठ ७००—दुवे व सतीश चैकर २५.५०
१२. सोप मेकर्स गाइड (साबुन इण्डस्ट्रीज)—सुरेशचन्द सहगल ८.२५
१३. साबुन-शिक्षा—गणपतलाल ४.५०
१४. साबुन तेल-शिक्षा—कालीचरन ४.५०
१५. आयल इण्डस्ट्री व वनस्पति घी निर्माण—सुरेशचन्द दुवे १५.००

कास्मेटिक्स (सौन्दर्य प्रसाधन)

१६. इन्डियन कास्मेटिक मेकर्स हैंड बुक—कालीचरन १५.००
१७. कास्मेटिक्स इन्डस्ट्रीज—कालीचरन ८.२५
१८. हेयर आयल (खुशबूदार तेल)—जे० सी० दास २.५०
१९. परफ्यूमरी मास्टर—जे० सी० दास २.५०
२०. धूप अगरबत्ती हवन सामग्री—कालीचरन २.५०
२१. फेस क्रीम और फेस पावडर—कालीचरन २.५०
२२. नेल पालिश—कालीचरन २.५०
२३. पाकिट इण्डस्ट्रियल फारमूलाज बुक—कालीचरन......... १.२५

फूड इण्डस्ट्री

२४. फूड इण्डस्ट्री—कालीचरन १५.००
२५. बेकरी इण्डस्ट्री—कालीचरन ४.५०
२६. कन्फेक्शनरी इण्डस्ट्री—कालीचरन ४.५०
२७. मिल्क एण्ड मिल्क प्रोडक्ट्स—कालीचरन ४.५०
२८. बंगाली मिठाई और पकवान—चन्द्रभान सहगल ४.५०

देहाती पुस्तक भण्डार (H.H.) चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

प्रत्येक आर्डर पर १) एक रुपया मूल्य की पुस्तक मुफ्त में टैक्निकल इण्डस्ट्रियल शिक्षा नामक मुफ्त इनाम में दी जावेगी।

अकलमन्द जमींदारो जमीन सोना उगल रही है

१.	पशु रोग—ए० ए० अनन्त	६.००
२.	फलों की उपज—ए० ए० अनन्त	६.००
३.	फूल-पौधे (फुलवारियां)—ए० ए० अनन्त	६.००
४.	खाद और उसकी उपयोगिता—ए० ए० अनन्त	६.००
५.	खेती और ट्रैक्टर—कृष्णानन्द शर्मा	८.२५
६.	तरकारी और सागभाजी की खेती—रामेश्वर अशांत	४.५०
७.	भारतीय कृषि कहावतें—रामेश्वर अशांत	४.५०
८.	मसालों की खेती—रामेश्वर अशांत	२.२५
९.	खेती और बागवानी—रामेश्वर अशांत	३.००
१०.	कपास की खेती—रामेश्वर अशांत	१.५०
११.	फूल-फुलवारी—रामेश्वर अशांत	३.००
१२.	गन्ने की खेती—रामेश्वर अशांत	१.५०
१३.	धान की खेती—रामेश्वर अशांत	१.५०
१४.	सन्तरे की खेती—रामेश्वर अशांत	३.००
१५.	आम की बागवानी—रामेश्वर अशांत	३.००
१६.	तिलहन की खेती—रामेश्वर अशांत	१.५०
१७.	खेत की तैयारी—रामेश्वर अशांत	२.२५
१८.	फसल रक्षक औषधियां—रामेश्वर अशांत	२.२५
१९.	फसल व्याधियों की रोकथाम—रामेश्वर अशांत	१.५०
२०.	उन्नत सिंचाई—रामेश्वर अशांत	२.२५
२१.	गेहूं की खेती—रामेश्वर अशांत	३.००
२२.	नीबू, सन्तरा, माल्टा—रामेश्वर अशांत	२.२५
२३.	बीज की तैयारी—रामेश्वर अशांत	१.५०
२४.	मकई (मक्का) की खेती—रामेश्वर अशांत	१.५०
२५.	दलहन की खेती—रामेश्वर अशांत	३.००
२६.	अनाजों की खेती—रामेश्वर अशांत	४.५०
२७.	तम्बाकू की खेती—कान्तऋषि	१.५०
२८.	पपीते की खेती—कान्तऋषि	१.५०
२९.	आधुनिक कृषि यन्त्र (किसानी औजार)—कान्तऋषि	१.५०
३०.	किचिन गार्डन—कान्तऋषि	३.००
३१.	ट्यूबवैल और पम्पिंग गाइड—पुष्पनाथ पंगोत्रा	४.५०
३२.	हैंड बुक ऑफ पोल्ट्री फार्मिंग—कालीचरन	१३.५०
३३.	फलों की काश्त—चौ० भवानीदास	४.५०
३४.	आधुनिक कृषि विज्ञान—रामेश्वर अशांत	८.२५
३५.	एनीमल हजबैण्डरी—विष्णुदत्त कविरत्न	१२.००

नोट—प्रत्येक आर्डर पर २।) सवा दो रुपया मूल्य की 'किसानों का भण्डार' नामक पुस्तक मुफ्त इनाम में दी जाएगी

देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-६

प्राकृतिक चिकित्सा की देन

[आठवां खण्ड]

मिट्टी के गुण तथा उपयोग

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विद्यापीठ लखनऊ द्वारा स्वीकृत साहित्य पर एक नई पुस्तक

मिट्टी के गुण तथा उपयोग

[मिट्टी के गुण तथा औषधीय उपयोगों से सम्बन्धित सचित्र पुस्तक]

लेखक
राजेश दीक्षित

देहाती पुस्तक भण्डार दिल्ली-६

चेतावनी

सावधान

आवश्यक सूचना

इस पुस्तक में संग्रहीत नुस्खे व विधियां लेखक व सम्पादक ने काफी सावधानी से लिखे हैं; फिर भी प्रेस, प्रूफरीडर की गलती अथवा व्यक्ति, देशकाल तथा जलवायु की प्रतिकूलता के कारण कोई नुस्खा हानिकारक भी हो सकता है। पाठकों को चाहिए कि पुस्तक में लिखा कोई भी कार्य करने से पहले किसी क्वालीफाइड वैद्य, हकीम, डाक्टर व चिकित्सक से मशवरा अवश्य ले लें, क्योंकि किसी नुस्खे के हानिकारक होने की दशा में लेखक, सम्पादक, पब्लिशर या प्रेस कतई जिम्मेदार नहीं होंगे।

—प्रकाशक

मूल्य

भारत में : दो रुपया

विदेश में : चार शिलिंग

प्रकाशक
देहाती पुस्तक भण्डार
चावड़ी बाजार दिल्ली-६

मुद्रक
टैक्नीकल प्रिंटिंग प्रेस,
सोनीपत (निकट दिल्ली)

दो शब्द

मनुष्य-शरीर जिन पांच तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि प्रकाश और वायु—से बना है, उनमें पृथ्वी मुख्य तत्त्व है।

पृथ्वी अर्थात् मिट्टी पानी का आधार है, सब प्रकार की धातुओं तथा जड़-चैतन्य पदार्थों का आधार भी यही है। इस पर उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुएं एक प्रकार से मिट्टी का ही रूपान्तर हैं—ऐसा कहा जा सकता है। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि प्राणी भी एक प्रकार से मिट्टी के रूपान्तर हैं और वे अन्न, जल आदि के रूप में एक प्रकार से मिट्टी का ही भोजन करते हैं।

जिस मिट्टी से सब प्राणियों का निर्माण हुआ है, वह मिट्टी ही सबके लिए जीवन तथा आरोग्यदायक भी है। विभिन्न प्रकार के रोगों को नष्ट करने की मिट्टी सर्वोत्तम औषधि है।

प्रस्तुत पुस्तक में मिट्टी के गुण तथा उपयोगों पर प्रकाश डाला गया है। आशा है, इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक महानुभावों के लिए हमारा यह प्रयास उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए सामग्री-चयन में हमें जिन सूत्रों से सहायता प्राप्त हुई है, उन सभी के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

राजेश दीक्षित

समर्पण

लखनऊ निवासी

अपने परम आत्मीय

श्री नन्दराम चतुर्वेदी 'नन्दू'

को

सस्नेह

विषय सूची

मिट्टी के गुण
तथा
उपयोग

सामान्य परिचय

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

"छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥"

अर्थात्—पृथ्वी (मिट्टी), जल, अग्नि (धूप या गरमी) आकाश (शून्य) और वायु—इन पांच तत्त्वों द्वारा हमारा यह अधम शरीर निर्मित हुआ है।

यथार्थ में पूछा जाय तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना ही इन पांच तत्त्वों से हुई है। इन पांच तत्त्वों में पृथ्वी अर्थात् मिट्टी ही सबसे मुख्य है।

मिट्टी विभिन्न तत्त्वों का आधार है

यद्यपि पांचों तत्त्व एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, परन्तु मिट्टी को इन सभी का आधार माना जाता है—इस बात के निम्नलिखित प्रमाण हैं।

पानी का आधार

मिट्टी पानी का आधार है। पानी के साथ मिट्टी का बहुत शीघ्र मेल हो जाता है। पानी मिली हुई मिट्टी को 'कीचड़' कहा जाता है। नदी, तालाब, समुद्र, कुएं आदि जितने भी जलाशय हैं, वे सब पृथ्वी (मिट्टी) के ऊपर ही हैं। यदि पानी के ऊपर मिट्टी डाल दी जाय तो वह पानी को सोख लेती है। उदाहरणार्थ यदि किसी जलाशय (तालाब

आदि) को मिट्टी डालकर भर दिया जाय, तो वहां जल का नाम नहीं रहता।

मिट्टी पानी के वेग को रोक सकती है। उदाहरणार्थ मिट्टी का बांध बनाकर बाढ़ के पानी को रोका जा सकता है।

अग्नि का आधार

मिट्टी अग्नि का भी आधार है। सूर्य की धूप को मिट्टी सोख लेती है। इसी कारण धूप पड़ने से मिट्टी गरम हो जाती है। इतना ही नहीं, मिट्टी अग्नि को बुझा भी देती है। यदि धधकती हुई आग पर मिट्टी डाली जाय, तो वह बहुत शीघ्र बुझ जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मिट्टी यदि न चाहे तो अग्नि नहीं जल सकती।

वायु का आधार

मिट्टी वायु का भी आधार है। मिट्टी में हवा को रोक देने की शक्ति है। मिट्टी की दीवार खड़ी करके हवा को आसानी से रोका जा सकता है।

मिट्टी यदि ठोस रूप ग्रहण कर ले तो हवा उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकती, परन्तु धूलि के रूप में मिट्टी हवा में उड़ती रहती है और हवा उसे अपने साथ मिलने से नहीं रोक पाती।

आकाश का आधार

मिट्टी आकाश अर्थात् शून्य में भी ठहर सकती है। हमारी पृथ्वी आकाश में ही टिकी हुई सूर्य के चारों

ओर घूमती रहती है। मिट्टी को भेदकर आकाश उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकता, पन्रतु आकाश के भीतर पृथ्वी रूपा मिट्टी निर्द्वन्द्व विचरण करती रहती है।

सबका आधार

मिट्टी सभी स्थावर-जंगम पदार्थों का आधार है। सोना, चांदी, लोहा आदि धातुएं, हीरे-मोती आदि रत्न, वृक्ष-लता गुल्म आदि सब मिट्टी के गर्भ से ही उत्पन होते हैं तथा मनुष्य, पशु-पक्षी- सरीष्टप आदि प्राणी मिट्टी के ऊपर ही चलते-फिरतेहैं। यदि मिट्टी न हो तो इनका कहीं नाम-निशान तक नहीं मिल सकता।
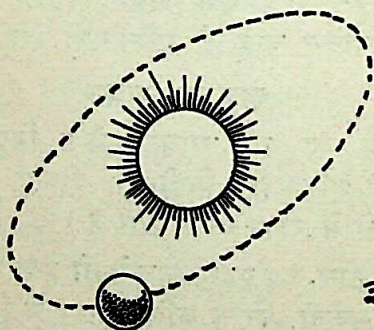
मिट्टी के विशिष्ट गुण

(१) मिट्टी अनेक प्रकार के आकार ग्रहण कर सकती है। जल के साथ मिलकर मिट्टी हांडी, घड़ा, खिलौने आदि प्रकार के स्वरूप धारण कर लेती है और उस रूप को प्राप्त करने के बाद पानी को अपने में से निकाल बाहर

करती है। सूख जाने पर मिट्टी में से पानी निकल जाता है। इस प्रकार मिट्टी पानी पर आधारित नहीं रहती, अपितु पानी ही मिट्टी पर आधारित रहता है।

(२) मिट्टी अत्यन्त मुलायम है, परन्तु वह आग और पानी के साथ मिलकर अत्यन्त कठोर रूप ग्रहण कर सकती है। उदाहरण के लिए आग में पकाई गई मिट्टी की ईंट बहुत कठोर होती है। कठोर रूप ग्रहण करने के बाद मिट्टी आग और पानी—दोनों को अपने में से निकाल बाहर करती है। ईंट में से आग और पानी का अंश पूर्णतः निकल जाता है। इस प्रकार मिट्टी अग्नि पर आधारित नहीं रहती, अपितु अग्नि ही मिट्टी पर आधारित रहती है। इससे सिद्ध होता है कि मिट्टी सभी तत्त्वों की आधार होने के साथ ही इस विशिष्ट गुण वाली है कि वह किसी भी तत्त्व से तुरन्त तादात्म्य स्थापित कर लेती है और उसमें घुल-मिल जाती है, परन्तु फिर वह सबको अपने में से निकाल कर बाहर भी कर देती है।

अन्य सभी तत्त्व आ-आकर मिट्टी में आश्रय लेते हैं, परन्तु मिट्टी किसी भी तत्त्व पर आश्रित नहीं है, क्योंकि सबके नष्ट हो जाने पर जो बच जाता है, वह मिट्टी ही होती है।

उदाहरण के लिए पंच तत्त्व निर्मित मनुष्य शरीर जब मृत हो जाता है, तब सभी तत्त्व उससे दूर पलायन कर जाते हैं, एक मात्र मिट्टी ही शेष रह जाती है।

सब तत्त्वों का आधार मिट्टी ही है, यह इस प्रकार से भी सिद्ध होता है कि पंच तत्त्वों से निर्मित सभी प्राणी

मिट्टी द्वारा उत्पन्न अन्न, फल आदि का भोजन करते हैं, अतः प्रकारान्तर से वे सब मिट्टी को ही खाते हैं और जीवित रहते हैं। बिना भोजन किए अर्थात् विना मिट्टी खाये किसी भी प्राणी का जीवित रह पाना असंभव है।

मिट्टी का औषधीय गुण

रोगों की चिकित्सा के लिए जितनी भी औषधियां प्रयोग में लाई जाती हैं, प्रकारान्तर से वे सभी मिट्टी की ही देन हैं और मिट्टी से ही उत्पन्न हुई हैं। अतः समस्त औषधियों की जन्मदात्री होने के कारण मिट्टी सबसे बड़ी औषध है। प्राकृतिक-चिकित्सा विधि ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि मिट्टी द्वारा सभी रोग दूर किये जा सकते हैं अर्थात् मिट्टी सभी रोगों की दवा है। मिट्टी चूंकि सर्वत्र सुलभ है और सबसे सस्ती है, अतः चिकित्सा-कार्य में मानव-समाज इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। परन्तु यथार्थ में यह उसकी महान भूल है। यदि उसे मिट्टी की रोग-नाशक शक्ति का भली-भांति ज्ञान हो जाय, तो उसे अन्य औषधियों के लिए भटकने और उनके लिए प्रचुर धन खर्च करने की आवश्यकता ही न पड़े। अस्तु, मिट्टी के रोग-नाशक गुणों से सभी को भली-भांति परिचित हो जाना चाहिए।

मिट्टी का निर्माण

आज के वैज्ञानिकों की मान्यता के अनुसार मिट्टी का निर्माण चट्टानों से हुआ है। चट्टानों के टूटने-फूटने से मिट्टी की उत्पत्ति हुई है और होती रहती है। चट्टानों से मिट्टी

और मिट्टी से चट्टानें बनने का क्रम निरन्तर जारी रहता है।

चट्टानों को तोड़ने में निम्नलिखित तीन शक्तियां मुख्य रूप से सहायक सिद्ध होती हैं—

(१) यान्त्रिक अथवा भौतिक शक्तियां।
(२) रासायनिक शक्तियां।
(३) जैविक शक्तियां।

यान्त्रिक अथवा भौतिक शक्तियां

यान्त्रिक अथवा भौतिक शक्तियों में निम्नलिखित मुख्य हैं—
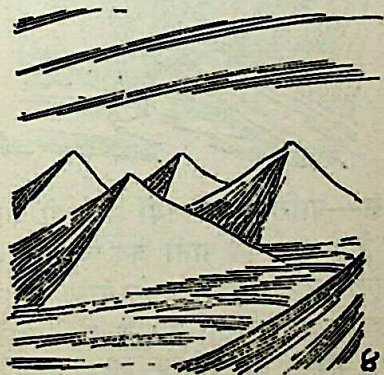
(१) वायु—जिन स्थानों में तीव्र हवाएं चलती हैं, वे मिट्टी के कणों को एक स्थान से उड़ाकर दूसरे स्थानों पर ले जाया करती हैं। ये हवाएं कभी-कभी चट्टानों के बड़े

टुकड़ों को भी उड़ा ले जाती हैं। वे टुकड़े परस्पर रगड़ खा-कर छोटे-छोटे टुकड़ों में बदल जाते हैं और धीरे-धीरे मिट्टी का स्वरूप धारण कर लेते हैं। राजस्थान तथा अन्य शुष्क मरुस्थल वाले भागों में यह क्रिया अधिक वेग से चलती है और वहां वायु के द्वारा उड़ाई गई चट्टानों से निर्मित रेत के बड़े-बड़े टीले तक दिखाई देते हैं।
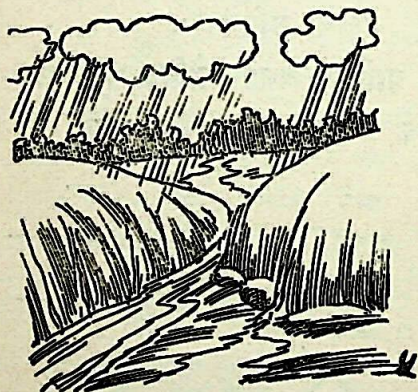
(२) **जल**—यान्त्रिक शक्तियों में पानी का महत्व भी बहुत अधिक है। वर्षा का पानी जब चट्टानों पर गिरता है, तब वह चट्टानों को तोड़कर अपने साथ उसके छोटे-छोटे कणों को बहाकर ले चलता है। वे छोटे-छोटे कण पर-स्पर टकराकर महीन हो जाते हैं और बालू या मिट्टी का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

चट्टानों में पड़ी हुई दरारों में वर्षा का पानी भर जाता है। ठंड पड़ने पर वह पानी दरारों के भीतर जम जाता

हैं। जम जाने के कारण उसका आयतन बढ़ता है, जिसके कारण चट्टानों की दरारें और अधिक चौड़ी हो जाती हैं और किसी दिन टूटकर बिखर जाती हैं। तत्पश्चात् उपर्युक्त विधि से वे चट्टानें छोटे-छोटे कणों में परिवर्तित होकर बालू या मिट्टी बन जाती है।

(३) **तापक्रम**——चट्टानों के भीतर अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ होते हैं। सूर्य की गरमी को पाकर उनका तापक्रम बढ़ जाता है। उस तापक्रम के दबाव से चट्टानों में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। उन दरारों में पानी भरकर पूर्वोक्त विधि से मिट्टी का निर्माण करता है।

इस प्रकार वायु, जल और ताप—ये तीनों ही मिट्टी का निर्माण करने में समानरूप से सहायक होते हैं।

रासायनिक शक्तियां

रासायनिक शक्तियों के कारण भी चट्टानों में बिखराव होता है, जिससे मिट्टी बनती है। मुख्य-मुख्य रासायनिक क्रियाएं निम्नलिखित हैं—

१. ऑक्सीकरण।
२. अवकरण।
३. कार्बनीकरण।
४. जल विच्छेदन।
५. विलयन।

(१) **ऑक्सीकरण**——ऑक्सीजन के प्रभाव से चट्टानें कमजोर होती हैं और वे टूटकर मिट्टी बन जाती है।

(२) **अवकरण**—ऑक्सीजन के बाहर निकलने की क्रिया को 'अवकरण' कहा जाता है। ऑक्सीजन के बाहर निकलने पर भी चट्टानें कमजोर हो जाती हैं और उनसे मिट्टी बनती है।

(३) **कार्बनीकरण**—ऑक्सीकरण की क्रिया में कार्बन-डाई-ऑक्साइड के मिलने की क्रिया को कार्बनीकरण कहा जाता है। कार्बन-डाई-ऑक्साइड पानी से मिलकर कार्बोनिक अम्ल का निर्माण करती है। यह अम्ल पानी की विलय-शक्ति को बढ़ाता है, जिसके कारण पानी में अधिक खनिज घुल जाते हैं।

(४) **जल विच्छेदन**—किसी तत्त्व पर पड़ने वाले पानी के प्रभाव को 'जलविच्छेदन' कहा जाता है। जल खनिजों पर अनेक प्रकार की क्रिया करके उन्हें कमजोर बना देता है, जिसके कारण मिट्टी का निर्माण होता है। ऑक्सीकरण तथा कार्बनीकरण के साथ-ही-साथ यह क्रिया भी होती रहती है।

(५) **विलयन**—खनिजों के यौगिक रासायनिक क्रिया द्वारा टूटकर सामान्य यौगिकों में बदलते रहते हैं और पानी में अधिक घुल जाते हैं। इसी को 'विलयन' कहा जाता है।

जैविक शक्तियां

पेड़-पौधे और जीव-जन्तु भी मिट्टी के निर्माण में सहायक होते हैं। फफूंदी, काई तथा पेड़-पौधे की जड़ें चट्टानों को कमजोर बनाती हैं, जिनके कारण उनमें टूट-फूट होती है।

बाद में ये पेड़-पौधे स्वयं भी सड़-गलकर उन चट्टानों के चूर्ण के साथ मिलकर मिट्टी का आकार ग्रहण कर लेते हैं।

इसी प्रकार पशु-पक्षी आदि जीव भी चट्टानों को हानि पहुंचाते हैं। चूहे चट्टानों को खोदकर बिल बनाते हैं। पशु-पक्षी सरीसृप आदि के मृत शरीर भी मिट्टी में मिलकर मिट्टी का ही स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं।
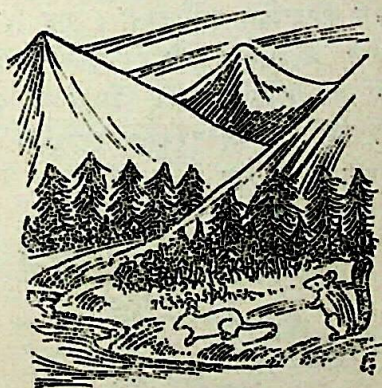
कृषि-आधार पर मिट्टी का वर्गीकरण

कृषि के आधार पर मिट्टी का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है—

(१) कंकरीली मिट्टी।
(२) बलुअर मिट्टी।
(३) चिकनी मिट्टी।
(४) दोमट मिट्टी।
(५) चूनेवाली मिट्टी।

(१) **कंकरीली मिट्टी**—इस मिट्टी में जीवांश का अभाव होता है। इसके कण बड़े आकार के होते हैं। ऐसी मिट्टी प्रायः पहाड़ी प्रदेशों में पाई जाती है और कृषि के अनुपयुक्त रहती है।

(२) **बलुअर मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी में बालू की अधिकता होती है। इसमें मिट्टी के कण कुछ बड़े परन्तु कंकरीली मिट्टी की अपेक्षा छोटे होते हैं। ऐसी मिट्टी में पानी को रोकने की शक्ति नहीं होती। यह दिन में अधिक गरम तथा रात्रि में अधिक ठंडी हो जाती है। जीवांश की अत्यधिक कमी होने के कारण यह मिट्टी भी कृषि के लिए अनुपयुक्त रहती है। इसमें तरबूज, खरबूजा जैसी फसलों को उत्पन्न किया जा सकता है।

ऐसी मिट्टी को चिकनी मिट्टी में मिलाकर उसे अधिक उपजाऊ बनाया जा सकता है।

(३) **चिकनी मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी के सभी कण अत्यन्त महीन होते हैं, जिसके कारण इसमें चिपकने की

शक्ति बहुत होती है। पानी पड़ते ही इस मिट्टी के कण सिकुड़कर परस्पर चिपक जाते हैं। सूखने पर वह मिट्टी अत्यन्त कठोर (कड़ी) हो जाती है तथा इसमें दरारें भी पड़ जाती हैं। ऐसी मिट्टी में पेड़-पौधों की जड़ें अधिक नहीं फैल पातीं अतः इसे भी कृषि के अयोग्य समझा जाता है। गोबर की सड़ी हुई खाद आदि मिलाकर इस मिट्टी को खेती के योग्य बनाया जा सकता है।

(४) **दोमट मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी में जीवांश पदार्थों की मात्रा पर्याप्त होती है। इसके कण चिकनी मिट्टी की अपेक्षा कुछ बड़े तथा बलुअर मिट्टी की अपेक्षा छोटे होते हैं, अतः इसे कृषि के लिए सर्वोत्तम माना जाता है। इसमें नमी को रोकने की शक्ति भी अधिक पाई जाती है। ऐसी मिट्टी को जुताई द्वारा पर्याप्त भुरभुरी बनाया जा सकता है।

इसकी अनेक श्रेणियां हैं। जैसे—मटियार, दोमट, बलुअर दोमट आदि।

(५) **चूने वाली मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी में चूने की मात्रा अधिक पाई जाती है।

मिट्टी की अन्य किस्में

बनावट के आधार पर मिट्टी की और भी अनेक किस्में होती हैं, जिन्हें नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिए—

(१) **अधिक काली मिट्टी**—भारतवर्ष में ऐसी मिट्टी नर्मदा नदी की घाटी तथा विंध्याचल एवं सतपुड़ा पर्वत के

पठारी क्षेत्र में पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी का रंग काला होता है। यह नदियों द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी तथा काली मिट्टी की मुलायम चट्टानों अथवा दोनों के मिश्रण से बनी होती है।

(२) **उथली काली मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी जिन क्षेत्रों में पाई जाती है, वहां सतह से चार-पांच फुट की गहराई तक तो काली मिट्टी रहती है और उसके नीचे का भाग काले पत्थरों का बना होता है। निमाड़, वर्धा तथा नागपुर जिले के पश्चिमी भागों में ऐसी मिट्टी पाई जाती है।
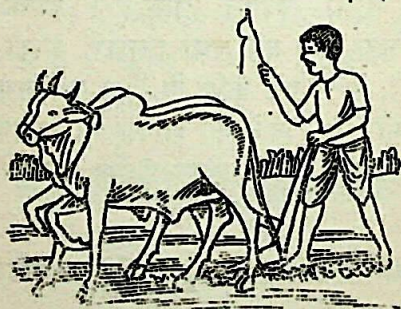
(३) **पहाड़ी मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी में काली मिट्टी का थोड़ा-बहुत अंश रहता है। यह रेत, पत्थर तथा मुरम की बनी होती है। विंध्याचल पर्वत के उत्तरी भाग तथा सतपुड़ा-पठार के कुछ भागों में इस प्रकार की मिट्टी पाई जाती है।

(४) **काली मिट्टी**—इस प्रकार की मिट्टी में राई के बराबर अथवा उससे कुछ बड़े आकार के चूना-कंकड़ के कण

मिले रहते हैं। इसमें चिकनी मिट्टी का परिमाण अधिक रहता है। गुजरात प्रान्त में ऐसी मिट्टी जमीन की सतह से कुछ फुट की गहराई तक फैली हुई है।

(५) रेतीली पीली मिट्टी—इस प्रकार की मिट्टी वैनगंगा तथा महानदी की घाटियों, बालाघाट जिले के दक्षिण भाग में, भण्डारा तथा चांदा जिले तथा छत्तीसगढ़ के कुछ भागों में पाई जाती है।

(६) हलकी मिट्टी—इसमें रेतीली जमीन से लेकर हर प्रकार की उपजाऊ भूमि का समावेश होता है। काली मिट्टी की तरह इसमें भी चूना-कंकण के कण पाये जाते हैं, परन्तु इस मिट्टी में दरारें नहीं पड़तीं।

चिकनी मिट्टी और रेत का प्रतिशत

किस प्रकार की मिट्टी में चिकनी मिट्टी तथा रेत का प्रतिशत कितना होता है, इसे नीचे लिखे अनुसार समझा जा सकता है—

मिट्टी की किस्म	रेत का प्रतिशत	चिकनी मिट्टी का प्रतिशत
रेतीली मिट्टी	८०—१००	२०—०
रेतीली मटियार	६०—८०	४०—२०
मटियार	४०—६०	६०—४०
काली मटियार	२०—४०	८०—६०
काली	०—२०	१००—८०

रेत और मिट्टी के अनुपात के अनुसार मिट्टी की और भी अनेक किस्में निश्चित की गई हैं जिनके विषय में कृषि सम्बन्धी पुस्तकों द्वारा जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मिट्टी के अन्य भेद

काली और भूरी मिट्टियों के अतिरिक्त मिट्टी के और अनेक भेद होते हैं। यथा—

(१) खड़िया मिट्टी।
(२) मुल्तानी मिट्टी।
(३) सज्जी मिट्टी।
(४) पीली मिट्टी।
(५) लाल मिट्टी।
(६) मिट्टी बागस्तानी।
(७) मिट्टी सिरसफा।

खड़िया मिट्टी के गुण तथा उपयोग

इस मिट्टी का रंग सफेद होता है। स्वाद में यह फीकी होती है। इसका प्रयोग पुताई, लिखाई और औषध के रूप में किया जाता है।

इसकी प्रकृति ठंडी तथा रुक्ष है। यह सिर के बालों के मैल को छांटती है। पुराने घाव और फोड़ों को भरती है। गरमी की सूजन को दूर करती है। मरहम तथा मंजन के रूप में इस मिट्टी का अधिक प्रयोग किया जाता है।

खड़िया मिट्टी द्वारा दांत मांजे जाएं तो वे स्वच्छ, सुन्दर, चमकीले तथा नीरोग बने रहते हैं।

खड़िया मिट्टी को संस्कृत में 'खटिका', फारसी में 'गिलसफेद' तथा अरबी में 'तीनुल् अबिजय' कहा जाता है।

मुल्तानी मिट्टी के गुण तथा उपयोग

इस मिट्टी का स्वाद कुछ पीलापन लिये हुए हरिताभ-सा होता है। यह पत्तेदार ढेलों में आती है।

इसकी प्रकृति ठंडी तथा रुक्ष है। यह वमन तथा विशूचिका को शान्त करने वाली, आमाशय को बल देने वाली, श्लेष्मा में लाभकारी तथा शोथ को दूर करने वाली है। इसका लेप उपंदश रोग में लाभदायक है। यह रोमकूपों को रोकने वाली तथा मस्तिष्क को वल देने वाली है।
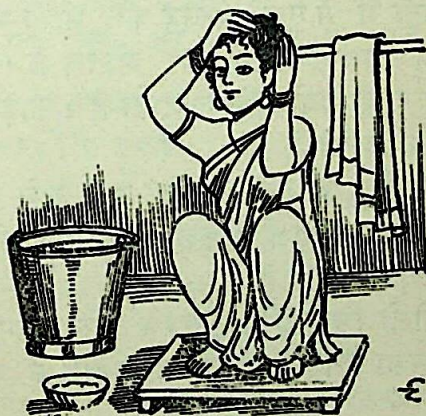
भारतवर्ष में मुल्तानी मिट्टी द्वारा स्त्रियां अपने सिर तथा केशों को धोती हैं। यह मिट्टी बालों की गन्दगी दूर करके उन्हें स्वच्छ, चमकीला, काला, मुलायम तथा मजबूत बनाती है। यह सिर की सफाई करने में अद्वितीय मानी जाती है।

मुल्तानी मिट्टी को फारसी में 'गिलमुल्तानी' तथा अरबी में 'तीन मुल्तानी' तथा 'खुरासानी' कहा जाता है।

सज्जी मिट्टी के गुण तथा उपयोग

सज्जी मिट्टी का प्रयोग कपड़ों को साफ करने में किया जाता है। यह मैल को काटती और कपड़ों को उजला बना देती है।

सज्जी मिट्टी का खाने के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। पापड़ आदि बनाते समय सज्जी मिट्टी प्रयोग में लाई जाती है। यह दीपक तथा पाचक मानी जाती है।

पीली मिट्टी के गुण तथा उपयोग

पीली मिट्टी में से एक प्रकार की भीनी-भीनी सुगन्ध आती है। यह शान्तिकारक तथा शीतल है। औषधि के रूप में इसका वाह्य प्रयोग किया जाता है। फोड़ा-फुंसी-घाव आदि को ठीक करती है।

भारतवर्ष में हाथ तथा बर्तन मांजने में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। कुछ स्थानों में इसे पुताई के काम में भी लाया जाता है।

गहरी पीली मिट्टी को 'रामरज' के नाम से पुकारा जाता है। इसका प्रयोग मकानों की पुताई में अधिक होता है।

लाल मिट्टी के गुण तथा उपयोग

लाल रंग की मिट्टी भी गुण में पीली मिट्टी जैसी ही होती है। मकानों की पुताई, रंगाई तथा सजावट के कार्यों में इसका अधिक उपयोग किया जाता है।

गिलसफा मिट्टी के गुण तथा उपयोग

यह रंग में कुछ पीलापन लिये हुए तथा स्वाद में फीकी होती है। यह चिकनी और कठोर पत्तंदार मिट्टी होती है। इसकी प्रकृति ठंडी तथा रूक्ष है। यह फेफड़ों की पीड़ा (दर्द) को लाभ करने वाली, शोथ (सूजन) को दूर करने वाली तथा रोमकूपों की रुद्धक है।

इसे फारसी में 'गिलसरशूय' तथा अरबी में 'तीनुल्-फारसी' कहा जाता है।

मिट्टी बागस्तानी के गुण तथा उपयोग

इस मिट्टी का रंग धूलिया तथा स्वाद फीका होता है। इसमें से एक प्रकार की सुगन्ध आती है।

सूखी बागस्तानी मिट्टी खून का बहना बन्द करती है। पानी में डालने से इसकी सुगन्ध तीव्र तथा मन को प्रसन्नता-दायक हो जाती है।

फारसी में इसे 'गिल बागस्तानी' तथा अरबी में 'तीन बागस्तानी' कहा जाता है।

पृथ्वी के नाम

संस्कृत तथा हिन्दी में पृथ्वी के निम्नलिखित नाम पाये जाते हैं—

(१) भू (२) भूमि (३) अचला
(४) अनन्ता (५) रसा (६) विश्वधरा
(७) स्थिरा (८) धरा (९) धरित्री

(१०) धरणी (११) क्षोणि (१२) ज्या
(१३) काश्यपी (१४) क्षिति (१५) सर्वंसहा
(१६) वसुमती (१७) वसुधा (१८) उर्वी
(१९) वसुन्धरा (२०) गोत्रा (२१) कु
(२२) पृथिवी (२३) पृथ्वी (२४) क्षमा
(२५) अवनि (२६) मेदिनी (२७) मही
(२८) रत्नगर्भा (२९) पारा (३०) विपुला
(३१) सागराम्बरा (३२) धरणीधरा (३३) धारणी
(३४) अब्धिमेखला (३५) जगद्वहा (३६) खण्डनी
(३७) भूतधात्री (३८) गन्धवती (३९) धात्री
(४०) महाकान्ता (४१) धारयित्री (४२) सहा
(४३) अचलकीला (४४) इड़िका (४५) इड़ा
(४६) उदधि वस्त्र (४७) इलिका (४८) इला
(४९) क्रीड़ाकान्ता (५०) आदिमा (५१) इरा
(५२) गिरिकर्णिका (५३) उर्वरा (५४) गौ
(५५) वीजप्रसू (५६) आद्या (५७) द्विरा
(५८) खगवती (५९) जगती (६०) वरा
(६१) अदिति (६२) श्यामा (६३) पृथवी
(६४) पहुमि (६५) सारंग (६६) असुर
(६७) उरा (६८) भुइं।

मिट्टी के नाम

संस्कृत तथा हिन्दी में मिट्टी के निम्नलिखित नाम प्रचलित हैं—

(१) मृत्तिका, (२) मृत्, (३) मृत्सा, (४) प्रशस्ता, (५) मट्टी, (६) मिट्टी, (७) माटी ।

धूलि के नाम

जो मिट्टी शुष्क तथा इतनी महीन होती है कि वायु के वेग के साथ आकाश में उड़ जाय, उसे धूलि कहा जाता है।

संस्कृत तथा हिन्दी में धूलि के निम्नलिखित नाम पाये जाते हैं—

(१) रज	(२) रेणु	(३) पांशु
(४) वातध्वज	(५) संचरा	(६) पिंजल
(७) वातकेतु	(८) धूर	(९) धूरि
(१०) धूल	(११) धूलि	(१२) धूसर
(१३) पांए	(१४) धूसरी	(१५) खेह

मिट्टी के विशेष गुण

मिट्टी के कुछ विशिष्ट गुण निम्नलिखित हैं—

(१) यह दूषित पदार्थ के रंग-रूप को बदलकर उसके दोष तथा दुर्गन्ध को दूर कर देती है। उदाहरणार्थ—विष्ठा को जब जमीन पर त्यागा जाता है तो मिट्टी उसे २४ घण्टे के भीतर ही बांबी जैसी शक्ल में बदलकर, उसकी सम्पूर्ण दुर्गन्ध को नष्ट कर देती है और शीघ्र ही उसे अपने में मिलाकर मिट्टी का रूप दे देती है।

(२) मिट्टी की लिपाई-पुताई करने से घर की दुर्गन्ध दूर होती है।

(३) हाथ-पांव अथवा शरीर के किसी भी भाग पर मिट्टी को मला जाय तो वह दुर्गन्ध को दूर कर त्वचा को

स्वच्छ, चिकनी एवं मुलायम बना देती है। साबुन की अपेक्षा मिट्टी द्वारा की गई सफाई अधिक लाभकर होती है।

(४) धातु आदि के बर्तनों की सफाई यदि मिट्टी द्वारा की जाय, तो वह उनकी सब प्रकार की गन्दगी तथा दुर्गन्ध को दूर कर देती है और उन्हें चमकीला बना देती है।

(५) मिट्टी कपड़ों के मैल को भी दूर कर देती है।

(६) मिट्टी सब प्रकार के रोगों को दूर करने की शक्ति रखती है। मिट्टी के चिकित्सकीय गुणों का वर्णन अगले प्रकरण में किया जायगा।

(७) मिट्टी द्वारा निर्मित बर्तनों में बने हुए साग, दाल, रोटी आदि अधिक स्वादिष्ट तथा अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं।

मिट्टी के चिकित्सकीय-उपयोग

मिट्टी हर प्रकार के रोगों की रामबाण औषध है। विभिन्न रोगों में मिट्टी का विविध प्रकार से वाह्य-प्रयोग किया जाता है। कुछ रोगों में मिट्टी को खाया भी जाता है।

इस प्रकरण में हम मिट्टी के चिकित्सकीय प्रयोगों का वर्णन कर रहे हैं।

मिट्टी की पट्टी

मिट्टी और पानी के मिलाने से कीचड़, कादा अथवा गीली मिट्टी तैयार होती है। इस गीली मिट्टी का ही पट्टी के लिए प्रयोग किया जाता है।

पट्टी देने के लिए जो मिट्टी प्रयोग में लाई जाय, वह ऐसी होनी चाहिए, जिसमें कोई कंकड़, कुश, कांटा आदि न हो। गांव के तालाबों में ऐसी मिट्टी आसानी से मिल जाती है। शहरों में यदि ऐसी शुद्ध मिट्टी उपलब्ध न हो तो उसके लिए यह तरीका सबसे अच्छा रहता है कि मिट्टी को पानी में भली-भांति घोलकर महीन चलनी में छान लें। चलनी में छानने से जो कूड़ा-कंकड़ निकले, उसे फेंक दें। फिर उस पानी को किसी बर्तन में भरकर रख दें। थोड़ी ही देर में मिट्टी बर्तन के पेंदे में बैठ जायगी, तब पानी को निथार कर अलग कर दें। मिट्टी की जो तह जमी हुई होगी, उसमें यदि कंकड़ आदि के महीन दाने होंगे तो वे

सबसे नीचे होंगे, अतः मिट्टी की उस जमी हुई तह को ऊपर से खुरच लें। फिर उस खुरची हुई मिट्टी को एक बार पुनः पानी में घोलकर तथा चलनी में छानकर थोड़ी देर के लिए फिर किसी बर्तन में भरकर रख दें। जब मिट्टी बर्तन की पैंदी में जम जाय, तब फिर ऊपर से खुरच लें। यदि नीचे की तली में इस बार कोई कंकड़ आदि न हो तो पूरी की पूरी मिट्टी उपयोग में ली जा सकती है। यह मिट्टी पूर्ण शुद्ध होगी और इसे निर्भयतापूर्वक पट्टी बांधने के उपयोग में लिया जा सकता है।

स्मरणीय है कि जहां किसी विशेष प्रकार की मिट्टी के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, वहां पर पट्टी बांधने के लिए हमेशा बलुअर दोमट किस्म की मिट्टी का ही व्यवहार करना चाहिए। बालू तथा चिकनी मिट्टी मिली हुई बलुअर-दोमट मिट्टी, जिसे कहीं-कहीं दो-फसली मिट्टी भी कहा जाता है, हर प्रकार के चिकित्सा कार्य में विशेष उपयोगी सिद्ध होती है।

उपर्युक्त प्रकार की शुद्ध मिट्टी को पानी में भिगोकर अर्थात् गीली करके (इतनी गीली न की जाय कि वह एकदम पतली हो जाय) घाव अथवा शरीर के अन्य रोगी स्थान पर आधा इंच मोटी तह के रूप में रखकर, ऊपरसे साफ कपड़े की पट्टी बांध देनी चाहिए। यदि घाव में कोई छेद आदि हो गया हो तो उसके ऊपर भी निर्भयतापूर्वक मिट्टी रख देनी चाहिए।

इस प्रकार से मिट्टी रखकर पट्टी बांधने को ही 'मिट्टी की पट्टी' कहा जाता है।

गीली मिट्टी का कम्प्रेस

पीछे गीली मिट्टी की पट्टी बांधने की जो विधि बताई गई है, उसी प्रकार से मिट्टी की पट्टी बांध देने के पश्चात् उसके ऊपर एक और मोटा सूती कपड़ा, फलालैन का टुकड़ा अथवा ऊनी कपड़ा रखकर उसके ऊपर कपड़े की दूसरी पट्टी बांध देने को 'मिट्टी का कम्प्रेस' देना कहा जाता है।

१०
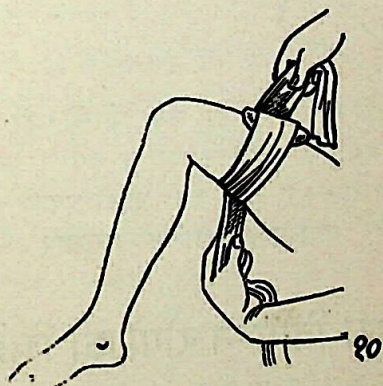
मोटा सूती कपड़ा, फलालैन का टुकड़ा अथवा ऊनी कपड़े का टुकड़ा अपने स्थान पर जहां का तहां बना रहे, इसलिए उसे निचली पट्टी के साथ स्थान-स्थान पर सी दिया जा सकता है अथवा सेफ्टीपिन लगाकर भी अटकाया जा सकता है। मिट्टी का कम्प्रेस ठंडे पानी अथवा गरम पानी में घोली हुई मिट्टी—दोनों प्रकारों से आवश्यकतानुसार दिया जाता है।

११
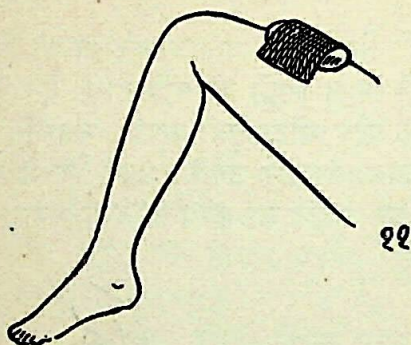
उक्त 'मिट्टी की गीली पट्टी' तथा 'गीली पट्टी का कम्प्रेस' इन दोनों विधियों का अन्तर स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। आगे चलकर, जहां इन दोनों प्रकार की पट्टी का वर्णन आया है, वहां उन्हें इसी के अनुसार समझ लेना चाहिए।

मिट्टी द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा

विभिन्न रोगों की चिकित्सा के लिए मिट्टी का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए, इसे नीचे लिखे अनुसार समझलें—

जलने का घाव

शरीर का जो भी अंग जल जाय, उसे ठंडे पानी के भीतर तब तक डुबाये रखना चाहिए, जब तक कि जलन की पीड़ा एकदम बन्द न हो जाय।

यदि जले हुए अंग को पानी में थोड़ी देर तक रखने के बाद बाहर निकाल लिया जाता है तो जलन की पीड़ा और

अधिक बढ़ जाती है। अतः जब तक जलन की पीड़ा एकदम बन्द न हो जाय, तब तक जले हुए अंग को पानी में निरन्तर डुबाये रखना चाहिए।

ठंडे जल में जले हुए अंग को निरन्तर डुबाये रखनें से जलन शान्त हो जाती है। फिर भी एक प्रकार का दर्द शेष रह जाता है, उसी दर्द के कारण घाव उत्पन्न होकर तकलीफ को बढ़ा सकता है।

इस दर्द को दूर करने के लिए गीली मिट्टी का कम्प्रेस देना चाहिए अर्थात् जिस स्थान पर जलन हो वहां पर ठंडे पानी में गीली की हुई मिट्टी की तह जमाकर ऊपर से साफ कपड़े की पट्टी बांध देनी चाहिए।

कुत्ता अथवा सियार का काटना

कुत्ता, सियार अथवा किसी अन्य विषैले कीट-पतंग के काटे हुए स्थान पर गीली मिट्टी अथवा कीचड़ की पट्टी बांध देनी चाहिए, इससे विष का प्रभाव दूर हो जायगा।

इसके लिए सबसे अच्छी विधि यह रहती है कि सर्वप्रथम काटे हुए स्थान को ठंडे पानी में डुबाये हुए ही उसे खूब रगड़ा जाय। यदि ठंडे पानी में डुबाने की सुविधा न हो तो काटे हुए स्थान पर ठंडे पानी में डुबाई हुई कपड़े की पट्टी बांध दी जाय तथा उस स्थान को हर समय पानी से तर रक्खा जाय। तत्पश्चात् वाष्प-स्नान देकर काटे हुए

*वाष्पस्नान, हिपबाथ, सिजबाथ तथा अन्य प्रकार के आरोग्यदायक स्नानों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हमारी 'पानी के गुण तथा उपयोग' शीर्षक पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

स्थान पर तथा समूचे शरीर में पसीना ले आया जाय।

तत्पश्चात् पर्याय क्रम से 'हिपबाथ' तथा 'सिजबाथ' दिये जाएं। स्नान के बाद कुछ देर तक धूप-स्नान किया जाय।

यदि केवल मात्र जल-चिकित्सा से लाभ न हो तो फिर काटे हुए स्थान पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाई जाय।

यदि सर्प आदि किसी अधिक विषैले कीड़े ने काटा हो और उपर्युक्त प्रयोगों से भी उसे लाभ होता हुआ दिखाई न दे तो उस स्थिति में रोगी को पांव से गले तथा मिट्टी अथवा कीचड़ में गाड़ कर रखना चाहिए। इस प्रयोग से सर्प का विष शरीर में से निकल जाता है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

टूटी हुई हड्डी

वृक्षों की टूटी हुई डाली को एक साथ मिलाकर यदि उसके ऊपर मिट्टी चढ़ा दी जाय और उसे भली-भांति बांध दिया जाय, तो थोड़े ही दिनों में डाली के दोनों टुकड़े मिल-कर एक हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि मनुष्य-शरीर के किसी भाग की टूटी हुई हड्डी को परस्पर मिलाकर ऊपर से मिट्टी की पट्टी चढ़ा दी जाय और उसे कसकर बांध दिया जाय तो वह टूटी हुई हड्डी शीघ्र ही जुड़ जाती है।

फोड़ा

फोड़ा जब उठना आरंभ हो, तब उसी समय फोड़े वाली जगह पर मिट्टी की पट्टी बांध देनी चाहिए। तत्पश्चात्

वीच-बीच में ठंडे पानी का कंम्प्रेस देते रहना चाहिए। इससे फोड़ा बहुत जल्दी वैठ जायगा या अच्छा हो जायगा।

फोड़े के विष को शरीर से एकदम बाहर निकालने के लिए 'हिप-बाथ' या 'सिज-वाथ' देना अच्छा रहता है।

यदि फोड़ा पकने लगे और ठंडे पानी तथा मिट्टी से सहज में ही अच्छा न हो, तो उस स्थिति में फोड़े वाली जगह पर स्टीम वाथ देकर पसीना निकाल देना चाहिए। फोड़े का मुंह फट जाने के बाद उस पर कीचड़ की पट्टी अथवा कीचड़ का कम्प्रेस चढ़ा देना चाहिए। इस विधि से हर प्रकार के फोड़े और घावों की तकलीफ दूर हो जाती है।

पित्ती निकलना

पित्ती निकलने पर शरीर में लाल-लाल चकत्ते से हो जाते हैं। इसके लिए ठंडे पानी की मालिश करके ऊपर से मिट्टी की कीचड़ लगा देनी चाहिए। जब वह सूख जाय, तब ठंडे पानी से ही स्नान कर लेना चाहिए। इससे पित्ती को आराम हो जायगा।

व्रण

पेट के गरम होने पर व्रण होता है। व्रण वाली जगह पर मिट्टी लगाने से उस जगह का दर्द और जलन शान्त हो जाती है तथा व्रण बहुत जल्दी ठीक हो जाता है।

बतौड़ी

बतौड़ी वाले स्थान पर मिट्टी का लेप करना चाहिए। बीच-बीच में स्टीम-बाथ देते रहने से ये शीघ्र अच्छी हो जाती है।

बतौड़ी वाले स्थान के आस-पास और भी बतौड़ियां निकलने लगती हैं, अतः उनके समीपवर्ती स्थान पर पानी डाल-डालकर रगड़ने से नयी बतौड़ियां उत्पन्न नहीं होतीं।

फुन्सी या घम्हौरी

फुन्सी या घम्हौरी हो जाने पर सर्वप्रथम गरम पानी से शरीर को भली-भांति धोकर मैल साफ कर लेना चाहिए, तत्पश्चात् ठण्डे पानी से स्नान करके शरीर पर मिट्टी का कीचड़ लपेट लेना चाहिए। जब वह सूख जाय, तब पुनः ठंडे पानी से स्नान कर लेना चाहिए।

अंगुल हाड़ा

अंगुल हाड़ा हो जाने पर कीचड़ की पट्टी या कम्प्रेस देना चाहिए, इससे उसकी तकलीफ दूर हो जाती है। मिट्टी के कम्प्रेस के साथ ही यदि हिप-बाथ, सिज-बाथ तथा स्टीम-बाथ लिया जाय तो शीघ्र आराम होता है।

शीतला

शीतला के दानों पर ठंडी कीचड़ का प्रलेप करने से शीतला से उत्पन्न होने वाले जख्म और उनकी तकलीफ बहुत शीघ्र दूर हो जाती है।

जिस समय शीतला के दाने सूखने लगते हैं, उस समय उनमें बहुत खुजली मचती है। खुजाने से घाव बन जाते हैं. जिनके दाग जीवन भर नहीं जाते। इस खुजली के समय यदि शीतला के दानों पर बलुई मिट्टी का प्रलेप किया जाय तो खुजली दूर हो जाती है और शरीर पर शीतला के दाग बिल्कुल नहीं रहते।

अर्श (बवासीर)

तलपेट तथा मलद्वार पर कीचड़ का प्रलेप करने पर अर्श के मस्से ठीक हो जाते हैं।

भगन्दर

जिस प्रकार अर्श (बवासीर) रोग (१) खूनी और (२) बादी—दो प्रकार का होता है, उसी प्रकार भगन्दर भी दो प्रकार का हुआ करता है—

(१) मलद्वार के भीतरी ओर का, जो बाहर से दिखाई नहीं देता।

(२) मलद्वार के भीतर से बाहर तक का अथवा बाहर की ओर से आरम्भ होकर भीतर की ओर जाने वाला, जो बाहर से भी दिखाई देता है।

डा० जुस्ट तथा महात्मा गांधी के मतानुसार भगन्दर रोग के लिए तलपेट तथा गुह्यद्वार में जहां तक भी संभव हो, घाव के ऊपर कीचड़ का प्रलेप करना चाहिए। इससे नया रोग ३-४ सप्ताह में तथा पुराना रोग ५-६ या इससे अधिक महीनों में ठीक हो जाता है।

कीचड़ के प्रलेप से भगन्दर की जलन एवं तकलीफ बहुत शीघ्र दूर हो जाती है। कीचड़ की पट्टी तथा ठंडे पानी का बाथ—ये दोनों भगन्दर की सर्वोत्तम चिकित्सा हैं।

रक्त आमाशय

रक्त ग्रामाशय अर्थात् डिसैंटरी की बीमारी होने का मुख्य कारण यह है कि कब्ज अथवा किसी अन्य कारण से जब मल-निस्सारक नली में कोई घाव हो जाता है, तब मल उस स्थान पर लगकर धीरे-धीरे सूख जाता है। फलस्वरूप वहां एक प्रकार के कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं, जो वहां काट-काट कर घाव उत्पन्न कर देते हैं।

इस रोग के लिए तलपेट पर ठंडी कीचड़ की पट्टी अथवा कम्प्रेस देना चाहिए तथा बीच-बीच में ठंडा पानी पीते रहना चाहिए। नया रक्त ग्रामाशय कीचड़ के एक-दो बैण्डेज अथवा कम्प्रेस से ही अच्छा हो जाता है।

महात्मा गांधी ने लिखा है कि तलपेट पर ठंडी कीचड़ के प्रलेप से उन्होंने रक्त ग्रामाशय, कब्ज तथा पाकस्थली में बहुत दिनों से स्थायी दर्द वाले अनेक रोगियों को स्वयं ठीक किया था।

विसर्प

यह रोग प्राय: सिर और चेहरे पर होता है। जिस स्थान पर यह रोग होता है, वह स्थान ब्लिस्टर की भांति लाल होकर फूल उठता है। उस फूले हुए लाल अंश के ऊपर उंगली दबाई जाय तो कुछ देर के लिए एक सफेद

दाग सा पड़ जाता है। इसमें सूजन के साथ तेज ज्वर भी होता है।

इस रोग के लिए पहले इूश देकर पेट साफ करा देना चाहिए।

जो स्थान फूला हुआ हो, वहां अनवरतरूप से ठंडे कीचड़ का प्रलेप करना चाहिए तथा बीच-बीच में ठंडे पानी की मालिश करते रहना चाहिए।

छाजन

यह रोग दाद जैसा होता है, परन्तु दाद से अधिक कठिन होता है। अधिक परिश्रम, दुश्चिन्ता, गरिष्ठ भोजन तथा अन्य अनियमितताओं के कारण यह रोग उत्पन्न होता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिए छाजन वाले स्थान पर कीचड़ की पट्टी बांधनी चाहिए।

दाद

दाद के ऊपर बलुई-मिट्टी अर्थात् नदी-तालाब के भीतर की मिट्टी का प्रलेप करना चाहिए। दिन में दो-तीन बार मिट्टी की पट्टी अथवा कम्प्रेस देने से ७-८ दिन के भीतर ही यह बीमारी दूर हो जाती है।

जीभ के छाले

जीभ के छाले अथवा घावों के लिए साफ बलुई मिट्टी से दांत रगड़कर मुंह धोना चाहिए तथा जितनी बार सम्भव हो, ठंडे पानी से कुल्ले करने चाहिए। बलुई मिट्टी

को पानी में घोलकर उससे कुल्ला करने पर जीभ का घाव और छाले बहुत शीघ्र ठीक हो जाते हैं।

कुष्ठ रोग

कुष्ठ रोग के घावों पर गंगा के पानी के नीचे वाली मिट्टी अथवा अन्य नदियों का कीचड़ १० से ३० मिनट तक दिन में दो बार लगाना चाहिए। यदि ऐसी मिट्टी उपलब्ध न हो तो उस स्थिति में शुद्ध बलुई मिट्टी का, कीचड़ घाव वाली जगह पर तथा सम्पूर्ण शरीर में लगाकर स्नान करना चाहिए।

मिट्टी के सूख जाने पर हिप-बाथ लेना लाभदायक है।

स्रोते वाली नदी के पानी तथा मिट्टी का उपयोग इस रोग में अधिक लाभदायक है।

लिवर ऐबसेस

जो लोग निरन्तर शराब पीते रहते हैं, प्रायः उन्हें ही यह रोग होता है। इस रोग में लिवर के ऊपर एक दूषित फोड़ा उत्पन्न हो जाता है और उसके साथ ही जोर का बुखार भी आ जाता है।

लिवर के ऊपर निरन्तर कीचड़ तथा पानी की पट्टी और कम्प्रेस देने तथा हिप-बाथ, सिज-बाथ, होल-बाथ और बीच-बीच में स्टीम-बाथ लेने से यह फोड़ा ठीक हो जाता है तथा बुखार चला जाता है।

कर्णमूल

कान के पास जो फोड़े हो जाते हैं, उन्हें कर्णमूल कहा जाता है।

कर्णमूल फोड़े अथवा घाव के ऊपर तथा उसके आस-पास कीचड़ का प्रलेप देना चाहिए। एक प्रलेप के सूख जाने पर दूसरा प्रलेप चढ़ा देना चाहिए। इस प्रकार जितने भी प्रलेप सम्भव हों देते रहना चाहिए, इससे कर्णमूल जल्द ठीक हो जाते हैं।

मसूढ़ों का फूलना

मसूढ़ों के फूलने पर बलुई मिट्टी को पानी में घोलकर उसी पानी से दिन में २-३ बार कुल्ले करने चाहिए। इससे पूर्व कुछ देर तक गरम पानी से मुंह को धोना और उसके तुरन्त बाद ही ठंडे पानी से धोना अच्छा रहता है। यह क्रिया जितनी भी बार सम्भव हो सके, करनी चाहिए।

दांत का दर्द

दांत में जिस स्थान पर दर्द होता हो, उसके ठीक पास वाले गाल पर बाहर की ओर बलुई मिट्टी के कीचड़ का प्रलेप करना चाहिए। एक प्रलेप के सूख जाने पर दूसरा प्रलेप चढ़ा देना चाहिए।

नाक के ऊपर या भीतर फोड़ा

नाक के भीतर अथवा ऊपर फोड़ा हो जाने पर पहले ठंडे पानी से नाक को धोकर साफ कर लेना चाहिए। फिर नाक के ऊपर दिन में ३-४ बार कीचड़ का प्रलेप चढ़ाना चाहिए।

कण्ठमाला

कण्ठमाला वाले स्थान पर जहां गांठ या घाव हो ठंडे

पानी तथा कीचड़ की पट्टी या कम्प्रेस देना चाहिए। साथ ही साथ हिप-बाथ या सिज-बाथ के द्वारा पेट को साफ कराके स्टीम-बाथ द्वारा शरीर से पसीना निकाल देना चाहिए।

गले की घंटी का बढ़ जाना

गले की घंटी बढ़ जाने को 'टानसिल' कहा जाता है। इस रोग के लिए प्रतिदिन हिप-बाथ, होल-बाथ या सिज-बाथ देना तथा सप्ताह में एक या दो बार स्टीम-बाथ देना लाभदायक है।

गले में तथा तलपेट में कीचड़ का कम्प्रेस देना चाहिए। इन सब उपायों से टांसिल बहुत शीघ्र ठीक हो जाते हैं।

घाव

घाव के उपर भीगी हुई मिट्टी के कीचड़ का लेप करना चाहिए। यदि घाव में गड्ढा हो गया हो तो उस गड्ढे के भीतर भी मिट्टी का लेप भर देना चाहिए। मिट्टी लगाने के बाद उसके ऊपर पानी से भीगा हुआ एक कपड़े का टुकड़ा रख दें। तत्पश्चात् उस भीगे हुए कपड़े के ऊपर सूखे हुए स्वच्छ कपड़े का टुकड़ा अथवा सूखा हुआ फ्लैनेल (फलालेन) रखकर इस प्रकार बांध दें कि मिट्टी अपने स्थान पर ठीक से चिपकी रहे।

जब मिट्टी सूख जाय, तब इसी विधि से दूसरी बार नई मिट्टी लगाकर दूसरे कपड़े की पट्टी बांध देनी चाहिए।

इस प्रकार बारम्बार पट्टी बदलते रहने से मिट्टी घाव के भीतर के मवाद तथा रस को खींचकर बाहर निकाल देती है और घाव सूखकर ठीक हो जाता है।

सफेद दाग

सफेद दाग वाली जगह पर गीली मिट्टी का प्रलेप बहुत लाभदायक रहता है। यदि गंगा की मिट्टी मिल जाय तो सर्वोत्तम है, अन्यथा जो भी अच्छी मिट्टी उपलब्ध हो, उसका प्रलेप करते रहना चाहिए। जब-जब मिट्टी सूख जाय, तब-तब नया प्रलेप कर देना चाहिए। धैर्य-पूर्वक इस क्रिया को दीर्घकाल तक करते रहने से सफेद दाग ठीक हो जाते हैं।

हाथ-पांव का फोड़ा

हाथ या पांव कहीं पर भी कोई फोड़ा हो गया हो तो उस स्थान पर मिट्टी के कीचड़ का प्रलेप लगाना चाहिए। मिट्टी के सूख जाने पर प्रलेप को बदल देना चाहिए। इस प्रकार बहुत जल्दी ही फोड़ा ठीक हो जाता है।

सूजन

शरीर के किसी स्थान पर सूजन हो तो वहां मिट्टी का कम्प्रेस चढ़ा देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

दांत-रोग

साफ बालू मिली हुई मिट्टी से दांत मांजने पर दांतों की जड़ें मजबूत होती हैं और वे सुन्दर बनकर चमकने लगते हैं। मिट्टी का मंजन करने से मुंह की बदबू भी दूर हो जाती है।

चर्म-रोग

हर प्रकार के चर्म-रोग (चमड़े की बीमारी पर) मिट्टी का कम्प्रेस चढ़ाने से वह रोग दूर हो जाता है।

कटने का घाव, छुरी अथवा छुरे का घाव, किसी जीव-जन्तु के काटने का घाव, खुजली, गंज, फोड़ा-फुंसी, कुष्ठ, आग से जल जाने का घाव, गोली लगने का घाव, कैंसर तथा मांस को क्षय करने वाले चर्म-रोग मिट्टी के कम्प्रेस से ठीक हो जाते हैं।

उपर्युक्त बीमारियों में रोग वाले स्थानों पर मिट्टी का प्रलेप करने के अतिरिक्त प्रत्येक रोगी के पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी अथवा कम्प्रेस देना चाहिए, इससे रोग शीघ्र दूर होता है।

डिप्थीरिया

इस बीमारी में गले के चारों ओर गीली मिट्टी का कम्प्रेस देने से शीघ्र लाभ होता है।

टीके का घाव

टीका लगवाने के कारण जो दूषित घाव हो गया हो, उस पर शुद्ध गीली मिट्टी का प्रलेप करने से उसके सब दोष दूर हो जाते हैं तथा घाव ठीक हो जाता है।

सिर दर्द

गले में मिट्टी का कम्प्रेस देने से सिर का कठिन दर्द भी दूर हो जाता है।

क्षय रोग

क्षय के रोगी को ठंडे पानी का स्नान देने के अतिरिक्त रोगी की छाती तथा पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधते रहने से पर्याप्त लाभ होता है।

प्रसव की पीड़ा

यदि किसी गर्भवती स्त्री के सहजभाव से बच्चा पैदा होने में कठिनाई आ रही हो तो उसके पेड़ू पर आधा इंच मोटी बालू तथा मिट्टी की पट्टी चढ़ा देने से प्रसव सरलता एवं शीघ्रता से हो जाता है।

यदि पहली पट्टी सूख जाय और बच्चा पैदा न हो तो फिर तुरन्त ही दूसरी पट्टी देनी चाहिए। इस प्रकार की पट्टी चार बार तक दी जा सकती है।

यदि पट्टी ना दी जा सके तो पेड़ू के ऊपर मिट्टी का प्रलेप ही कर देना चाहिए।

भीतरी सफाई

प्राकृतिक-चिकित्सा विधि में पेट को साफ करने के लिए 'बाथ' लेने का नियम है। प्राकृतिक-चिकित्सा के आचार्य लुई कुने ने कहा है कि यदि बाथ लेने पर भी कोठा साफ न हो तो उस स्थिति में थोड़ी सी साफ बालू खा लेने पर दस्त अवश्य ही साफ आता है और भीतरी सफाई हो जाती है।

चोट का दर्द

चोट लगने के कारण कैसा भी दर्द क्यों न हो, दर्द वाली जगह पर मिट्टी की पट्टी बांध देने से दर्द ठीक हो जाता है।

खाज-खुजली

खाज-खुजली वाले स्थान पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधने से इस रोग में बहुत शीघ्र लाभ होता है।

आंख का दुखना

दुखती हुई आंख के चारों ओर मिट्टी का प्रलेप कर देने से वह अच्छी हो जाती है।

शिरोवेदना

सिर में चारों ओर मिट्टी का लेप कर देने से भी सिर दर्द ठीक हो जाता है।

कब्ज

पेड़ू पर गीली मिट्टी का प्रलेप करने से कब्ज दूर हो जाता है।

आंव

पेड़ू पर गीली मिट्टी का प्रलेप करने से आंव की बीमारी ठीक हो जाती है।

पाकस्थली का दर्द

दो-तीन दिन तक पेड़ू पर गीली मिट्टी का लेप करने से पाकस्थली का दर्द ठीक हो जाता है।

ज्वर

पेड़ू पर मिट्टी का प्रलेप करने से ज्वर उतर जाता है। आवश्यकतानुसार यह प्रलेप एक से अधिक बार भी किया जा सकता है।

प्लेग

पेडू पर तथा गिल्टियों पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधने से प्लेग रोग दूर हो जाता है।

जलन के फफोले

अग्नि अथवा गरम पानी से जले हुए स्थानों पर यदि फफोले पड़ गये हों तो उनके ऊपर मिट्टी का प्रलेप कर देने से फफोले ठीक हो जाते हैं।

गाल फूलना

मिट्टी से दांत मलकर ठंडे पानी से कुल्ला करने पर गाल फूलना तथा मसूढ़ों का फूलना ठीक हो जाता है।

दांत का हिलना

मिट्टी से दांत मलकर ठंडे पानी से कुल्ला करने पर दांतों की जड़ का हिलना ठीक हो जाता है और वे मजबूती से जम जाते हैं।

दांतों की सफाई

बालू मिली हुई मिट्टी से दांत साफ करने पर वे चमकीले, सुन्दर, मज़बूत तथा नीरोग बने रहते हैं।

एमीनिया

वयस्क हो जाने पर भी यदि किसी लड़की को रजःस्राव न हो तो उसे 'एमीनिया' रोग कहा जाता है। इस रोग के कारण जी मिचलाना, वमन होना, पेट में दर्द, पेट फूलना, खांसी, सिरदर्द आदि लक्षण प्रकट होते रहते हैं।

इसके लिए तलपेट पर मिट्टी की पट्टी बांधनी चाहिए

तथा बीच-बीच में स्टीमबाथ और नियमित रूप से सिजबाथ तथा हिप-बाथ लेने से शीघ्र लाभ होता है।

रजःस्राव की कमी

स्त्रियों को पर्याप्त मात्रा में रजःस्राव न होने के कारण अनेक प्रकार के हानिकर लक्षण प्रकट होते हैं।

इसके लिए प्रति दिन २० मिनट तक दो बार सिज-बाथ लेना चाहिए तथा तलपेट पर मिट्टी की पट्टी बांधनी चाहिए, इससे रजःस्राव पूर्ण मात्रा में आने लगता है।

कष्टार्त्तव

कष्ट के साथ रजःस्राव होने से पीठ तथा कमर में दर्द, सिरदर्द, कब्ज, शरीर तथा हाथ-पांवों में ऐंठन आदि लक्षणऋतु स्राव से पूर्व प्रकट होते हैं।

इसके लिए प्रतिदिन दो बार सिज-बाथ, प्रातःकाल एक बार हिप-बाथ तथा सम्पूर्ण स्नान लेना एवं तीसरे पहर तलपेट पर ठंडे पानी की मालिश करके शरीर को धो डालना तथा रात्रि के समय तलपेट पर मिट्टी की पट्टी बांधना सर्वोत्तम रहता है।

बीच-बीच में डूश का व्यवहार भी करते रहना चाहिए, ताकि दस्त साफ आता रहे। इस प्रकार से यह शिकायत कुछ ही दिनों में दूर हो जाती है।

अधिक रजःस्राव

आवश्यकता से अधिक मात्रा में रजःस्राव होने से आलस्य, सिर में भारीपन, कब्ज, कम्प आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

इस रोग से छुटकारा पाने के लिए प्रतिदिन दो बार सिजबाथ, प्रातः एक बार हिप-बाथ तथा सम्पूर्ण स्नान, तीसरे प्रहर तलपेट पर ठण्डे पानी की मालिश करके शरीर को धो डालना तथा रात्रि को तलपेट पर मिट्टी की पट्टी बांधना सर्वोत्तम चिकित्सा है।

दस्त साफ आता रहे, इसलिए बीच-बीच में डूश भी लेते रहना चाहिए। इस प्रयोग से कुछ ही दिनों में यह शिकायत दूर हो जायगी।

ऋतु बन्द होना

रजःस्राव न होने पर दिन में एक बार स्टीम बाथ, दो बार सिज बाथ तथा तीन बार हिप-बाथ देने तथा एक बार कीचड़ की पट्टी तथा एक बार पानी की पट्टी बांधने से असमय में बन्द हो जाने वाला ऋतुस्राव पुनः खुल जाता है।

प्रसव का फूल न निकलना

प्रसव के बाद यदि फूल न निकले तो नदी-तटवर्ती बलुई मिट्टी का कीचड़ बनाकर उसकी एक इंच मोटी तह का प्रलेप तलपेट पर करके ऊपर से मोटा कपड़ा बांध दें, इससे थोड़ी ही देर में फूल बाहर निकल आता है।

तलपेट का दर्द

प्रसव के उपरान्त तलपेट में दर्द होने पर निम्नलिखित चिकित्सा करें—

तलपेट पर बलुई मिट्टी के कीचड़ का डेढ़ इंच मोटा प्रलेप करके ऊपर से मोटा कपड़ा बांध दें और रात भर उसी

प्रकार रहने दें। इस उपचार द्वारा प्रसव के बाद तलपेट में होने वाला दर्द ठीक हो जाता है।

गर्भवती की कमर का दर्द

गर्भवती की कमर में दर्द होने पर हिप-बाथ देने तथा तलपेट पर बलुई मिट्टी की पट्टी बांधने से आराम होता है।

प्रसव-वेदना

प्रसव न हो पाने के कारण यदि गर्भिणी को अधिक वेदना हो रही हो तो बलुई मिट्टी का कीचड़ बनाकर तलपेट पर लगभग दो इंच मोटा प्रलेप करके पट्टी बांध देनी चाहिए तथा गरम और ठंडा पानी पीने को देना चाहिए, इससे कुछ ही समय में सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

सूतिका रोग

प्रसव के बाद होने वाले सूतिका रोग को दूर करने के लिए तलपेट पर मिट्टी की पट्टी बांधना लाभदायक रहता है। इसके अतिरिक्त सिज-बाथ, हिप-बाथ आदि की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

योनिद्वार की खुजली

बहुत सी गर्भिणी स्त्रियों को योनि द्वार पर हो जाने वाली खुजली परेशान करती है, इसके लिए निम्नलिखित उपाय काम में लाना चाहिए—

गरम पानी द्वारा योनि-द्वार को भली-भांति धोकर उसके ऊपर गीली मिट्टी का प्रलेप कर दें। इससे खुजली और उसकी जलन शान्त हो जायगी।

पार्श्व वेदना

गर्भावस्था में किसी-किसी स्त्री को छाती के पास अथवा पंजर के नीचे दर्द की शिकायत होती है, उसके लिए निम्नलिखित उपचार करें—

दर्द वाले स्थान पर मिट्टी का प्रलेप करें। साथ ही प्रतिदिन स्टीम-बाथ तथा हिप-बाथ और सिजबाथ की व्यवस्था भी कर दें।

गर्भावस्था में रक्तस्राव

गर्भावस्था में पक्स्थली, जरायु, नाक अथवा फेफड़ों से रक्तस्राव होना बहुत घातक होता है।

इसे रोकने के लिए तलपेट पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाना चाहिए तथा पेट को साफ रखना चाहिए, क्योंकि यह शिकायत भी प्राय: कब्ज के कारण ही होती है।

गर्भावस्था का शूल

गर्भावस्था में शूल (वेदना) होने पर निम्नलिखिति उपाय करें—

पर्याय क्रम से गरम पानी का फोमेंण्ट तथा तलपेट पर कीचड़ की पट्टी दें, इससे दर्द बन्द हो जायगा। यदि इतने पर भी पेट का दर्द न घटे तो डूश देकर दस्त साफ करा देना चाहिए।

जरायु की स्थान-भ्रष्टता

जरायु के स्थान-भ्रष्ट होने पर उसे तुरन्त अपने स्थान पर बैठा देना चाहिए तथा पट्टी बांध देनी चाहिए, ताकि वह पुन: अपने स्थान से न हटे। इसके अतिरिक्त मिट्टी का

कम्प्रेस चढ़ाकर रोगिणी की तकलीफ घटाने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही रोगिणी को हिलने-डुलने नहीं देना चाहिए।

जरायु का प्रदाह

जरायु के प्रदाह में पर्याय क्रम से गरम और ठण्डा पानी देकर जरायु को साफ करना चाहिए तथा दर्द वाले स्थान में पर्याय क्रम से गरम तथा ठंडे पानी का कम्प्रेस तथा तलपेट पर मिट्टी की पट्टी बांधनी चाहिए।

तलपेट पर कीचड़ का कम्प्रेस देना

अनेक बीमारियों के लिए तलपेट पर कीचड़ का कम्प्रेस देने की बाबत लिखा गया है। तलपेटपर कीचड़ का कम्प्रेस देने का सही तरीका इस प्रकार है—
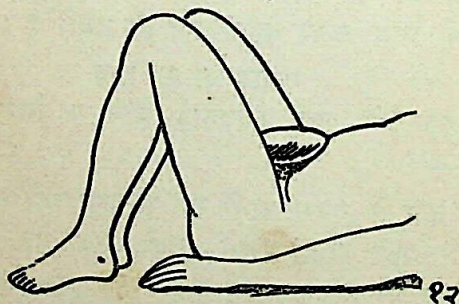
१२

एक इतना बड़ा साफ कपड़ा लें, जिससे पूरा तलपेट ढंक जाय। उस कपड़े पर आधा इंच मोटी चिकनी बलुई मिट्टी की पुल्टिस जैसी सतह बिछाएं। फिर कपड़ा सहित कीचड़ को तलपेट पर रख दें। कीचड़ वाला हिस्सा तलपेट की त्वचा पर तथा कपड़ा ऊपर की ओर रहना चाहिए।

इसके पश्चात् उस कपड़े के ऊपर एक टुकड़ा फलालेन अथवा ऊनी कपड़े का रखकर सेफ्टीपिन लगा देनी चाहिए, ताकि मिट्टी अपने स्थान पर बनी रहे।

इस कम्प्रेस को दो घण्टे बाद बदल देना चाहिए।

शरीरिक स्वास्थ्य

(१) शारीरिक-स्वास्थ्य एवं त्वचा की सुन्दरता के लिए शरीर पर मिट्टी का उबटन लगाना सबसे अच्छा है।

शुद्ध मिट्टी को पानी से गीला करके उबटन की भांति अपने सम्पूर्ण शरीर पर लगा लेना चाहिए। कोई भी भाग ऐसा न रहे, जहां मिट्टी न लगी हो। मिट्टी लगाने के बाद धूप में बैठ जाएं तथा मिट्टी को बार-बार गीला तथा पतला करके शरीर पर लगाते रहें। मिट्टी बहुत गाढ़ी नहीं लगानी चाहिए, परन्तु इतनी अवश्य लगानी चाहिए कि शरीर की त्वचा कहीं से भी खुली न रहे।

इस प्रकार मिट्टी लगाये हुए १५ मिनट से १ घण्टे तक—जब तक मन को सुहाये—धूप में बैठना चाहिए। सूखते समय मिट्टी शरीर में कुछ खिचाव पैदा करती है। परन्तु उससे घबराना नहीं चाहिए। जब मिट्टी सूख जाए, ठंडे पानी से खूब मल-मल कर स्नान करना चाहिए तथा शरीर पर लगी हुई सम्पूर्ण मिट्टी को धो डालना चाहिए।

इस प्रकार प्रतिदिन मिट्टी लगाकर स्नान करने से शरीर एकदम हल्का तथा फूल के समान सुन्दर हो जाता है। हर प्रकार के चर्म-रोग दूर हो जाते हैं। शरीर स्वस्थ बना रहता है। बुढ़ापा बहुत समय तक पास नहीं आता

तथा सिरके बाल भी अधिक दिनों तक काले बने रहते हैं।

इस प्रयोग से शरीर की त्वचा पर दिखाई पड़ने वाले हर प्रकार के दाग-धब्बे कुछ ही दिनों में एकदम साफ हो जाते हैं।

(२) गरमी के दिनों में नंगे पांव गीली मिट्टी पर शुद्ध हवा में टहलने से स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है।

मिट्टी को शुद्ध करना

मिट्टी को शुद्ध करने की एक दूसरी विधि यह भी है कि उसे पानी में डालकर आग पर सिझा लिया जाय। यदि मिट्टी में कोई दोष होता है तो वह आग पर सिझाने से दूर हो जाता है। सिझाने के बाद मिट्टी को धूप में डाल-कर सुखा लेना चाहिए।

औषध के रूप में हमेशा शुद्ध और साफ की हुई बलुई मिट्टी का ही प्रयोग करना चाहिए। हवाशून्य अंधेरे स्थान में रक्खी हुई मिट्टी में कीड़े पड़ जाते हैं, जिसके कारण वह सड़ जाती है और उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। ऐसी मिट्टी को व्यवहार में नहीं लाना चाहिए।

जो लोग मिट्टी का चिकित्सकीय कार्यों में उपयोग करना चाहते हों, उन्हें शुद्ध और साफ बलुई मिट्टी तथा शुद्ध और साफ पानी घर में हर समय तैयार रखना चाहिए।

यदि बलुई मिट्टी उपलब्ध न हो तो उस स्थिति में जो भी शुद्ध मिट्टी उपलब्ध हो उसी का प्रयोग करना चाहिए। मिट्टी जितनी अधिक चिकनी होती है, वह उतनी ही अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

12770/ टेक्नीकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित

प्राकृतिक चिकित्सा की देन

[नवां खण्ड]

स्व-मूत्र चिकित्सा

स्व-मूत्र चिकित्सा

मनुष्य का अपना ही मूत्र (पेशाब) शरीर के प्रायः सभी कठिन से कठिन रोगों को भी नष्ट कर देने की शक्ति रखता है। मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण कर, मूत्र-प्रयोगों के अनुभवी विद्वानों के मत पर आधारित एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक, जिसे पढ़कर आप आश्चर्य चकित होने के साथ ही लाभान्वित भी होंगे।]

लेखक
राजेश दीक्षित

देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

•

प्रकाशक
देहाती पुस्तक भण्डार
चावड़ी बाज़ार, दिल्ली–६

•

लेखक
राजेश दीक्षित

•

•

मूल्य
स्वदेश में : तीन रुपया
विदेश में : आठ शिलिंग

•

मुद्रक
टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस
सोनीपत (निकट दिल्ली)

दो शब्द

स्व-मूत्र-चिकित्सा कोई नई वस्तु नहीं है। आयुर्वेद में मानव-मूत्र को विषघ्न तथा रसायन कहा गया है—इससे सिद्ध है कि प्राचीन-काल में मानव-मूत्र का उपयोग किया जाता रहा होगा—अन्यथा शास्त्रकार इसके गुणों से परिचित कैसे हो पाते ?

'डामर तन्त्र' के एक भाग 'शिवाम्बु कल्प' में स्व-मूत्र की रोग-नाशक एवं पुष्टिदायक शक्तियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। जैनियों के 'व्यवहार सूत्र' में स्व-मूत्र पान का उल्लेख पाया जाता है इसी प्रकार बाइबिल जैसे धर्म ग्रन्थ में भी इसका उपयोग करने की सम्मति दी गई है।

तिब्बत के लामाओं द्वारा स्व-मूत्र का प्रयोग प्राचीन काल से किया जाता रहा है और इसके द्वारा वे स्वस्थ-शरीर एवं दीर्घायु बने रहते हैं।

स्व-मूत्र जठराग्नि को, प्रदीप्त करने वाला, कृमि-नाशक; विष नाशक, वात-पित्त-कफ के दोषों को दूर करने वाला, रसायन, रेचक, पाचक, पोषक तथा शरीर के वाह्य एवं आभ्यन्तरिक रोगों को नष्ट कर स्वास्थ्य, सौन्दर्य तथा दीर्घायु को देने वाला है।

विभिन्न चिकित्सा-प्रणालियों के आविष्कार के कारण स्व-मूत्र द्वारा रोगों की चिकित्सा करने की सरल, सहज तथा बिना खर्च वाली चिकित्सा पद्धति का क्रमशः लोप होता चला गया और लोग इसे सर्वथा त्याज्य वस्तु के रूप में अनुभव करने लगे। कालान्तर में दैवी-प्रेरणावश इंग्लैण्ड निवासी जॉन आर्मस्ट्राङ्ग का ध्यान बाइबिल के एक वाक्य की ओर आकर्षित हुआ, जिसमें मनुष्य को अपने शरीर से निकले हुए पानी (मूत्र) को पीने की सलाह दी गई थी। स्व० आर्मस्ट्राङ्ग उन दिनों एक भयङ्कर रोग से ग्रस्त थे। उन्होंने बाइबिल के उक्त आदेश-वाक्य से आकर्षित होकर सर्वप्रथम स्वयं अपने ऊपर ही स्व-मूत्र का प्रयोग किया, फलतः उन्हें अत्यन्त चामत्कारिक ढंग से स्वास्थ्य लाभ हुआ। उसके बाद तो वे इस दिशा में निरन्तर प्रयोग करते रहे और सहस्रों व्यक्तियों को स्व-मूत्रोपचार पद्धति से उन्होंने निरोग किया। इस विषय पर अपने अनुभवों के आधार पर 'दी वाटर आफ लाइफ' नामक एक सुप्रसिद्ध पुस्तक की रचना भी उन्होंने की।

महात्मा गांधी के शिष्य तथा गुजरात के प्रमुख समाज-सेवी स्व० रावजी भाई, मणिभाई पटेल को संयोगवश जान आर्मस्ट्रांग की पुस्तक हाथ लगी। उससे प्रभावित होकर रावजी भाई ने स्व-मूत्रोपचार के प्रयोग सर्वप्रथम अपने ही ऊपर और बाद में अपने मित्रों तथा स्नेहियों पर किए। उनमें आशातीत सफलता मिलने पर सहस्रों अन्य व्यक्तियों को भी उन्होंने स्व-मूत्रोपचार के लिए प्रेरित तथा लाभान्वित किया। इसी विषय पर स्वानुभव के आधार पर उन्होंने 'मानव-मूत्र' शीर्षक एक गुजराती पुस्तक की रचना की, जिसका अब हिन्दी भाषा में भी रूपान्तर हो चुका है।

प्रस्तुत पुस्तक स्व० रावजी भाई लिखित पुस्तक के आधार पर ही संक्षेप में लिखी गई है, जो लोग इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हों, उन्हें स्व० रावजी भाई की पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

मुझे विश्वास है कि मेरे इस प्रयत्न से स्व० रावजी भाई की आत्मा को तो शान्ति मिलेगी ही, अन्य सहस्रों व्यक्तियों को भी लाभ पहुंचेगा।

स्व-मूत्र चिकित्सा के भारत में पुनरुद्धारक, मानव-मात्र के हितैषी तथा 'मानव-मूत्र' जैसी उपयोगी पुस्तक के लेखक स्व० रावजी भाई के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूं।

गजापाइसा, मथुरा
१-५-१९७० ई०

—राजेश दीक्षित

समर्पण

भारत में मूत्रोपचार के पुनरुद्धारक
गुजरात निवासी
स्व० रावजी भाई मणिभाई पटेल
एवं
आगरा निवासी अपने परम आत्मीय
श्री बंगालीमल जैन 'जयहिन्द'
को

विषय-सूची

मानुषं क्षार कटुकं मधुरं लघु चोच्यते।
चक्षुरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम् ॥

—हारीत संहिता

× × ×

नेत्ररोगहरं पित्तं प्रवृद्धं च नियच्छति।
पित्तं तिक्तं कृमिहरं रोचनं कफवातजित्
तिक्तं पामाहरं मूत्रं मानुषं तु विषायहम् ॥

—अष्टांग संग्रह

× × ×

नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद्रसायनम्।
रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम् ।

—भाव प्रकाश

× × ×

पित्तरक्तकृमिहरं रेचनं कफवातजित्।
तिक्तं मोहहरं मूत्रं मानुषं तु विषायहम् ॥

—योग रत्नाकर

: १ :

स्व-मूत्र प्रयोग की परम्परा

स्व-मूत्र (अपना ही मूत्र अर्थात् पेशाब) का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। यह प्रयोग सैकड़ों वर्ष पूर्व भी हमारे देश में प्रचलित था। भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य देशों में भी स्व-मूत्र का प्रयोग विभिन्न रोगों की चिकित्सा तथा शरीर को स्वस्थ रखने में किया जाता था। इस सम्बन्ध में यहां कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं ताकि इस विषय में लोगों को वास्तविकता का पता चल सके।

'शिवाम्बुकल्प' में स्व-मूत्र पान का उल्लेख

भारतीय तन्त्र ग्रन्थों में 'डामर तन्त्र' का नाम प्रसिद्ध है। यह पुस्तक पुराण काल में, आज से कई सौ वर्ष पूर्व संस्कृत भाषा में लिखी गई थी। इस पुस्तक का एक भाग है—'शिवाम्बु कल्प' शिवाम्बु स्व-मूत्र को कहा जाता है। शिवाम्बु कल्प में १०७ संस्कृत के श्लोक हैं। उनमें से कुछ श्लोकों और उनके भावार्थ को नीचे लिखा जाता है।

"अथ वक्ष्ये महेशानि क्रिया सिद्धिप्रदायिनीः।
पात्राणि विहितानीह शास्त्रविद्भिः प्रयत्नतः॥ १॥

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं रीतिजं तथा।
आयसे मृण्मयं चैव नागनं काच संभवम्॥ २॥

वैणवं काष्ठ संभूतं बिल्वजं कम्बु संभवम् ।
अस्थिजं चर्मज चैव पात्रं वै पर्ण संभवम् ॥ ३ ॥

एषामन्यतमे पात्रे धारयेच्च शिवाम्बुकम् ।
उत्तमं मृण्मयं पात्रं ताम्रजं देवि सूत्तमम् ॥ ४ ॥

अक्षार कटुकान्नाशी साधकः श्रम वर्जितः ।
शजोत लघुभुक् रात्रो भूमिशायी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

चतुर्थ्यामवशिष्टायां रात्रावुत्थाय बुद्धिमान् ।
मूत्रोत्सर्गं मुकुर्वीत प्राङ् मुखः परमाशयः ॥ ६ ॥

आदिधारां परित्यज्य चरमां च त्यजेद् बुधः ।
मध्यधारां प्रगृह्णीयादेष च विधिरुत्तमः ॥ ७ ॥

यथा भुजंगदेहेषु मुखे पुच्छे विषं भवेत् ।
एवं शिवाम्बु धारायां प्रकारः प्रथितः शिवे ॥ ८ ॥

शिवाम्बु चामृतं दिव्यं जरारोग विनाशनम् ।
तदादाय महायोगी कुर्याद्वै निजसाधनम् ॥ ९ ॥

मुख शुद्धिं विहाय कृत्वा चावश्य कीं क्रियाम् ।
पिवेच्छिवाम्बु विमल जन्म रोग विनाशनम् ॥ १० ॥

मासमात्र प्रयोगेण निर्मलाभ्यन्तरो भवेत् ।
मासद्वयाभ्यासवशात् पाटवं चेन्द्रियादिषु ॥ ११ ॥

मास त्रय प्रयोगेण रोग दुःख विनाशनम् ।
पञ्चमासाभ्यासतोऽपि दिव्यदृष्टिरनातुरः ॥ १२ ॥

षण्मासाज्जायते योगी महाबुद्धिः कृतागमः ।
सप्तमासप्रयोगेण जायते बलवत्तरः ॥ १३ ॥

अष्टमासाभ्यास वशात् स्वर्णकान्तिः स्थिराभवेत् ।
नवमासप्रयोगेण क्षय कुष्ठ विनाशनम् ॥१४॥

दशमासप्रयोगेण जायते तेजसां निधिः।
एकादशभिरेवात्र मासैः सर्वाङ्ग निर्मलः ॥ १५ ॥

जायते मानवो वर्षप्रयोगेणार्क संनिभः।
वर्षद्वयेन जायेत पृथिवीतत्त्वसंजयी ॥ १६ ॥

वर्षत्रयेण जायेत अप्तत्त्वजयकृद्भवेत् ।
चतुर्वर्षाभ्यासतः स्यात् तेजस्तत्त्वजयो ध्रुवम् ॥ १७ ॥

पंचवर्षाभ्यासतश्च योगी वायु जयी भवेत्।
सप्तवर्षप्रयोगेण अहंकारजयो भवेत् ॥ १८ ॥

अष्टवर्षप्रयोगेण महत्तत्त्वजयी भवेत्।
नवर्षाभ्यासतोऽयं जन्मात्ययविवर्जितः ॥ १९ ॥

दशवर्ष प्रयोगेण खेचरः श्रम वर्जितः।
तथा चैकादशे वर्षे शृणोत्याभ्यंतरं ततः ॥ २० ॥

द्वादशाब्द प्रयोगेण जीवेदाचन्द्रतारकम्।
बाध्यते नैव सर्पाधै विषाधैर्न विहिस्यते ॥
न दह्यते ऽग्निना क्वापि काष्ठवत्तरेत जलम् ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे पार्वती ! अब मैं सिद्धि-प्रदायिनी क्रिया का वर्णन करता हूं तथा शास्त्रज्ञों द्वारा सुविचारित पात्रों के सम्बन्ध में कहता हूं—

सोना, चांदी, तांबा, कांसा, पीतल, लोहा, जस्ता, मिट्टी, कांच बांस, बेल, शंख, हड्डी, चमड़ा अथवा पत्तों का बना हुआ पात्र होना चाहिए।

इनमें से किसी भी पात्र में 'शिवाम्बु' (स्व-मूत्र) को धारण करे। हे देवि ! मिट्टी का पात्र इन सबमें उत्तम तथा तांबे का पात्र सर्वोत्तम है।

क्षार (खारे), कड़वे तथा चरपरे पदार्थों का सेवन न करने वाला श्रम-रहित, सुपाच्य एवं सात्विक भोजन करने वाला जितेन्द्रिय व्यक्ति रात्रि के समय पृथ्वी पर शयन करे। फिर वह बुद्धिमान व्यक्ति रात्रि के चतुर्थ प्रहर में उठकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके मूत्र-त्याग करे।

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह प्रारम्भ तथा अन्त की धारा को छोड़कर मध्य (बीच) की धारा को मूत्र-पान के लिए ग्रहण करे, क्योंकि यही उत्तम विधि है।

हे शिवे ! जिस प्रकार सर्प के मुख तथा पूंछ में विष होता है उसी प्रकार मूत्र-धारा के विषय में भी समझना चाहिए।

शिवाम्बु अर्थात् स्व-मूत्र दिव्य अमृत के समान है। वह जरा एवं रोग का विनाश करने वाला है अतः महायोगी व्यक्ति को चाहिए कि वह पहले उसका पान करे। तत्पश्चात् अपने साधन में प्रवृत्त हो।

मुख शुद्धि करके आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर जन्म-रोग नाशक निर्मल शिवाम्बु का पान करना चाहिए।

एक मास तक शिवाम्बु का प्रयोग करने से हृदय निर्मल हो जाता है। दो मास के अभ्यास से हड्डियां पुष्ट होती हैं। तीन मास के प्रयोग से रोग रूपी दुःख का नाश होता है। पांच मास के प्रयोग से दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। छै मास के प्रयोग से योगी को महान्-बुद्धि प्राप्त होती है सात मास के प्रयोग से अधिक बल प्राप्त होता है। आठ मास के अभ्यास से शरीर में सोने जैसी कान्ति स्थिर हो जाती है। नव मास के प्रयोग से क्षय, कुष्ठ आदि रोगों का नाश होता है। दस मास के प्रयोग से व्यक्ति परम तेजस्वी होता है। ग्यारह मास के प्रयोग से सर्वांग निर्मल हो जाते हैं। एक वर्ष के प्रयोग से सूर्य

जैसा तेज प्राप्त होता है। दो वर्ष के प्रयोग से साधक पृथ्वी तत्त्व पर विजय पा लेता है। तीन वर्ष के प्रयोग से जलतत्त्व पर विजय मिलती है। चार वर्ष के प्रयोग से अग्नि तत्त्व पर विजय मिलती है। पांच वर्ष के प्रयोग से योगी वायुतत्व पर विजय पा लेता है। सात वर्ष के प्रयोग से अहंकार तत्त्व पर विजय मिलती है। नव वर्ष के अभ्यास से जन्म-मृत्यु से रहित हो जाता है। दस वर्ष के प्रयोग से आकाश गामी बनता है। ग्यारह वर्ष के प्रयोग से अन्तर्नाद सुनाई देने लगता है। बारह वर्ष के प्रयोग से साधक चन्द्र-ताराओं की आयु तक जीवित बना रहता है। फिर उस पर सर्प आदि जहरीले जानवरों के विष का प्रभाव नहीं होता। उसे अग्नि नहीं जला पाती तथा पानी में उसका शरीर सूखी लकड़ी की भांति तैरता रहता है अर्थात् वह पानी में भी नहीं डूबता।

इसी पुस्तक में आगे चलकर मूत्र प्रयोग के अन्य लाभों का वर्णन किया गया है, जिसका सार-संक्षेप इस प्रकार है—

"जो योगी प्रातःकाल के समय नाक से शिवाम्बु का सेवन करता है—उसके वात, पित्त और कफ तीनों दोष नष्ट हो जाते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा शरीर पुष्ट हो जाता है।

जो व्यक्ति दिन और रात्रि में तीन-तीन वार शिवाम्बु से शरीर की मालिश करता है, वह दीर्घायु होता है, उसके शरीर के सभी जोड़ परिपुष्ट हो जाते हैं तथा कोई रोग नहीं रहता। शरीर की त्वचा सुन्दर तथा सुनहरी हो जाती है।

जो व्यक्ति तीन वर्ष तक प्रतिदिन एक बार शिवाम्बु का पान तथा शिवाम्बु से मालिश करता है, उसका शरीर परम पराक्रमी तथा तेजस्वी हो जाता है। ऐसा व्यक्ति कला एवं विज्ञान से युक्त होकर वाक्-सिद्धि प्राप्त करता है और चन्द्र-तारागणों की स्थिति काल तक जीवित रहता है।"

उक्त बातों में चाहे अतिशयोक्ति दिखाई देती हो, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि आज से कई सौ वर्ष पूर्व भी शारीरिक आरोग्य एवं लाभ की दृष्टि से स्व-मूत्र का उपयोग किया जाता था।

'व्यवहार सूत्र' में स्व-मूत्र पान का उल्लेख

जैन धर्म के आचार्य भद्रबाहु कृत 'व्यवहार सूत्र' में भी स्व-मूत्र पान का उल्लेख मिलता है। विशेष प्रकार की प्रतिज्ञाएं स्वीकार करने वाले मुनि के लिए मूत्र-पान का आदेश देते हुए उन्होंने लिखा है—

"दो पडिमाओ पन्नत्ताओ। तं जहा-खुड्डिया वा मोयपडिमा, मह्लिलया वा मोयपडिमा। खुड्डियांण मोयपडिमं पडिवन्नस्थ अणगारस्स कप्पइ से पढमनिदाहकाल समयंसि वा चरमनिदाहकालसमयंसि वा बहिया गामस्सवा (वृ० १ उ० सू० ६) रायहाणीए वणंसि वा वणदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा पव्वयदुग्गंसि वा भोच्चा आरुभइ चोदसमेण पारेइ; अभोच्चा आरुभइ सोलसमेणं पारेइ। जाए जाए मोए आईयव्वे दिया आगच्छेइ ॥ ४१ ॥

महल्लियाएं मोयपडिमं जाव पव्वयदुग्गंसि वा भोच्चा आरुभइ सोलसमेणं पारेइ; अभोच्चा आरुभई अट्ठारसमेणं पारेइ। जाए जाए मोए आइयव्वे दिया आगच्छेइ ॥ ४२ ॥"

भावार्थ—दो प्रतिमाएं अर्थात् दृढ़ संकल्प पूर्वक की गई प्रतिज्ञाएं कही गई हैं जो इस प्रकार हैं—

छोटी मोक (मूत्र) प्रतिमा (प्रतिज्ञा) और बड़ी मोक प्रतिमा (मूत्र-प्रतिज्ञा)।

छोटी मोक प्रतिज्ञा (मूत्र-प्रतिज्ञा) को स्वीकार करने वाला मुनि ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में अथवा अन्त में (अथवा शरद् ऋतु के प्रारम्भ में भी) गांव अथवा नगर के बाहर, राजधी, वन-वन-समूह, पर्वत,

अनेक पर्वतों के बीच, गुफा आदि के किसी एकान्त स्थान में इसे धारण करना चाहिए।

यदि मुनि आहार करके इस प्रतिमा (प्रतिज्ञा) को स्वीकार करता है तो उसे ६ उपवास करके पारणा करनी चाहिए और यदि आहार किए बिना इस प्रतिमा को स्वीकार करता है तो ७ उपवास करके पारणा करनी चाहिए।

बड़ी मोक प्रतिमा को भी उपर्युक्त में से किसी एकान्त स्थान में स्वीकार करना चाहिए और यदि आहार स्वीकार करे तो ७ उपवास करके और आहार बिना स्वीकार किए ८ उपवास करके पारणा करनी चाहिए। उपवास काल में दिन भर के मूत्र का दिन में ही पान करना चाहिए।

उक्त उद्धरण से सिद्ध है कि जैनधर्म में भी प्राचीनकाल से स्व-मूत्र के प्रयोग का प्रचलन रहा है।

बाइबिल में स्व-मूत्र पान का उल्लेख

पुरानी बाइबिल के पांचवें अध्याय में कहा गया है—

"Drink waters out of thine own cistern".

भावार्थ—'तू अपने ही शरीर से निकलने वाले पानी (मूत्र) का पान कर।'

इसी प्रकार नई बाइबिल में (मेथ्यू ६-१७) उल्लेख है।

"When thou fastest anoint thy head and wash your face."

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि बाइबिल में भी मूत्र के प्रयोग का उल्लेख है और उसके प्रयोग की आज्ञा धर्मशास्त्र ने भी दी है।

प्रयोग के अन्य उदाहरण

सन् १६९५ ई. में "सल्मन्स इंग्लिश फिजीशियन" नामक एक अंग्रेजी पुस्तक इंगलैण्ड में प्रकाशित हुई थी, जिसमें मूत्र-प्रयोग सम्बन्धी निम्नलिखित बातों का उल्लेख मिलता है।

"मनुष्य तथा अनेक पशुओं का मूत्र अनेक प्रकार के उपयोग में आता है। मानव मूत्र का उपयोग विशेषतः भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र में होता है।

मानव-मूत्र जमाओं को पिघलाकर साफ करता है तथा सड़ान एवं विकारों को रोकता है। यदि इसे पिया जाए तो तिल्ली, जिगर, पित्ताशय के रोग, जलोदर, मासिक धर्म का रुकना, पाण्डु रोग, प्लेग तथा सब तरह के विषैले ज्वर नष्ट होते हैं।

ताजा अथवा गुनगुने मूत्र की मालिश से त्वचा स्वच्छ एवं मुलायम होती है। यह हर प्रकार के जहरीले घातक हथियारों के घाव को ठीक करता है, त्वचा सम्बन्धी भयानक रोगों को नष्ट करता है। ज्वर में शरीर पर इसकी मालिश की जाए तो ज्वर की गर्मी कम होती है शारीरिक कम्प, अंग-शून्यता तथा पक्षाघात के लिए मूत्र की मालिश अत्यन्त लाभकारी है। तिल्ली का दर्द भी मूत्र की मालिश से दूर हो जाता है।

मानव-मूत्र शरीर के अनेक रोगों को जड़ से नष्ट कर देता है। गुर्दे, आंत, तथा गर्भाशय की पीड़ा, मुंह की सूजन, सुस्ती, आधा सीसी पक्षाघात, दिमाग की नसों का खिचना, चक्कर आना, बधिरता, लंगड़ापन, शरीर के किसी अंग का सूखजाना अथवा निरुपयोगी हो जाना, जुकाम मस्तिष्क तथा सिर के रोग, प्रदर आदि गर्भाशय के रोग गुर्दे की पथरी, पेशाब का रुक जाना तथा मूत्र सम्बन्धी अन्य रोगों की यह एक विशेष लाभदायक चिकित्सा है।"

अठारहवीं शताब्दी में इंग्लेण्ड से प्रकाशित 'वन थाउजेण्ड-नोटेबिल थिंग्ज' नामक पुस्तक में लिखा है।

"शरीर के भीतरी तथा बाहरी प्रत्येक रोग को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय प्रातः नौ दिन तक स्व-मूत्र को पीना है। यह स्कर्वी को मिटाता तथा शरीर को हल्का एवं प्रफुल्लित रखता है।

मूत्र प्रयोग से जलोदर तथा कमल रोग दूर होते हैं।

यदि गरम मूत्र से कान को धोया जाए तो कान का बजना, बहरापन तथा अनेक प्रकार के कर्ण रोग दूर होते हैं।

मूत्र द्वारा आंखों को धोया जाए तो लाली, सूजन, पीड़ा आदि रोग दूर होते हैं तथा नेत्रदृष्टि निर्मल एवं तेज होती है।

मूत्र द्वारा हाथ पांवों की मालिश करने से उनका फटना तथा छाले आदि दूर होते हैं तथा उनके जोड़ लचीले बन जाते हैं।

मूत्र से धोने पर ताजा जख्म ठीक हो जाता है एवं मूत्र की मालिश से खुजली और जलन दूर होती है।

स्व-मूत्र द्वारा गुदा को बार-बार धोने से बवासीर तथा अन्य व्याधियां दूर होती हैं।"

उक्त उदाहरणों के अतिरिक्त जो विभिन्न उल्लेख पाये जाते हैं, उनके अनुसार अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में फ्रांस के दन्त चिकित्सक रोगों की दांतों को मूत्र से धोकर उनके सब प्रकार के दन्त रोगों को दूर कर दिया करते थे।

तिब्बत के लामा मूत्र का उपयोग करके अपने शारीरिक स्वास्थ्य को सैकड़ों वर्षों तक सुरक्षित बनाये रखने के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

मरुभूमि तथा समुद्र के यात्री पानी समाप्त हो जाने पर कई-कई दिनों तक स्व-मूत्र का सेवन करके अपनी यात्रा को पूरा करते थे—इसका उल्लेख मिलता है। यह उपाय वर्तमान काल में भी अपनाया जाता है।

गांव की बड़ी-बूढ़ियां बच्चों की बीमारियों में उन्हीं का मूत्र पिलाकर उनके स्वास्थ्य को ठीक रखती हैं तथा शरीर के किसी अंग के कट जाने पर उस कटे हुए स्थान पर अपना ही पशाव करके पट्टी बांध दी जाती है और उससे जख्म भर जाता है। यह विधि कई स्थानों पर आज भी प्रचलित है।

सुप्रसिद्ध जीवशास्त्री प्रो० जीन रोस्टेन्ड तथा डा० टी० विल्सन डीचमैन आदि ने विभिन्न परीक्षणों तथा प्रयोगों को करने के बाद यह घोषणा की है कि मानव-मूत्र शरीर के समस्त रोगों को दूर करने की आश्चर्यजनक शक्ति रखता है।

आधुनिक काल में 'दी वाटर आफ लाइफ' के लेखक स्व० जॉन डब्ल्यू० आर्मस्ट्रांग ने पुरानी बाइबिल से प्रेरणा प्राप्त करके सर्वप्रथम अपने ही ऊपर मूत्र का प्रयोग किया, जिसके फल-स्वरूप उनका दीर्घकाल से रोगी शरीर पूर्ण स्वस्थ हो गया तथा डाक्टरों ने जहां उनके जीवन में सन्देह व्यक्त किया था, वहां मूत्रोपचार के लाभ को पाकर वे दीर्घकाल तक स्वस्थ एवं जीवित रहे।

अपने ऊपर मूत्र-चिकित्सा के प्रभाव को देखकर जान आर्मस्ट्रांग ने स्व-मूत्र-चिकित्सा की दिशा में जीवन भर हजारों प्रयोग किये। उन्होंने अपना एक चिकित्सालय भी खोला, जिसमें वे प्रत्येक रोग की चिकित्सा रोगी के अपने मूत्र से ही करके उसे पूर्ण बना दिया करते थे।

हर प्रकार के साध्य तथा असाध्य सहस्रों रोगियों को उनकी चिकित्सा से पर्याप्त लाभ हुआ। उन्हीं अनुभवों के बल पर उन्होंने

मूत्र-चिकित्सा के नियम निर्धारित किये जॉन आर्मस्ट्रांग ने इस विलुप्त सी चिकित्सा विधि को पुनः प्रचारित किया। ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

जान आर्मस्ट्रांग लिखित पुस्तक 'दि वाटर आफ लाइफ' से ही प्रेरणा प्राप्त करके गुजरात के खेड़ा जिला निवासी प्रयोगवीर श्री रावजी भाई मणिभाई पटेल का इस चिकित्सा-विधि की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। जॉन आर्मस्ट्रांग की ही भांति स्व० रावजीभाई श्री ने भी स्व-मूत्र के प्रयोग पहले अपने ही शरीर पर किये, जिनके कारण उन्हें दीर्घकालीन रोगों से सदैव के लिए छुटकारा प्राप्त हुआ। जब उन्होंने विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह भली-भांति अनुभव कर लिया कि मूत्रोपचार द्वारा सभी रोगों की सहज में सफल चिकित्सा की जा सकती है, तो उन्होंने अपने मित्रों, स्नेहियों तथा निकटवर्ती लोगों को भी मूत्रोपचार की प्रेरणा दी।

स्व०रावजी भाई महात्मा गांधी के निकटवर्ती सहयोगी तथा गुजरात भारत सेवक समाज के संगठन कर्ता थे। उनका सम्पूर्ण जीवन लोक-सेवा में ही व्यतीत हुआ था। ऐसे परोपकारी पुरुष की प्रेरणा से प्रेरित होकर सैकड़ों लोगों ने मूत्र-प्रयोग द्वारा अपने शारीरिक रोगों को दूर करने में सफलता प्राप्त की। स्वयं रावजी भाई ने भी इस दिशा में सैकड़ों लोगों का मार्ग-दर्शन किया। साथ ही उन्होंने स्वानुभव तथा परानुभव के उदाहरणों से युक्त मूत्रोपचार पर गुजराती में 'मानव मूत्र' नामक एक उपयोगी पुस्तक भी लिखी। उक्त पुस्तक को भारत सेवक समाज गुजरात द्वारा प्रकाशित की गई है तथा अब उसका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है। दोनों भाषाओं में रावजी भाई की उक्त पुस्तक की २५००० से अधिक प्रतियां अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। इसी से यह सिद्ध है कि इस चिकित्सा-प्रणाली की ओर हमारे देश के लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है और वे इस सम्बन्ध

में पर्याप्त रुचि भी ले रहे हैं। स्व. रावजी भाई की पुस्तक में ऐसे सैकड़ों लोगों के उदाहरण दिये गए हैं, जिन्होंने आधुनिक काल में स्व-मूत्र चिकित्सा द्वारा विभिन्न प्रकार के कठिन, संक्रामक तथा डाक्टरों द्वारा असाध्य घोषित किये गए रोगों को दूर करने में भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

प्रस्तुत पुस्तक स्व० रावजी भाई के स्वानुभूत प्रयोगों पर ही आधारित है और उन्हीं की चिकित्सा-पद्धति को इसमें सर्वसाधारण के लाभ के लिए प्रस्तुत किया गया है। जो लोग इस सम्बन्ध में और अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें स्व० रावजी भाई की पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

उक्त सभी उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूत्र-चिकित्सा कोई नई वस्तु नहीं है। इसका प्रयोग देश तथा विदेशों में सैकड़ों वर्षों से होता रहा है। कालान्तर में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों—आयुर्वेद, यूनानी, ऐलोपैथी आदि के विकसित हो जाने पर मूत्रोपचार की ओर से जन साधारण का ध्यान हटता चला गया। अन्य चिकित्सा प्रणालियों के चिकित्सकों ने भी स्वार्थ अथवा अन्य कारणों से लोगों को इस सहज एवं सरल पद्धति से विमुख होने में सहायता की।

परन्तु सृष्टि चक्र में प्रत्येक वस्तु का परिवर्तन होता रहता है—इस सिद्धान्तानुसार वर्तमान काल के प्रयोग-वीरों द्वारा स्व-मूत्र-चिकित्सा पद्धति को पुनरुज्जीवित किया गया है। लोगों को चाहिए कि वे इस सहज तथा सरल उपचार-पद्धति द्वारा अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करें।

: २ :

मूत्रोपचार की वैज्ञानिकता

आजकल हर वस्तु के गुणावगुण को वैज्ञानिकता की कसौटी पर कसने की प्रथा-सी चल पड़ी है। अतः मूत्रोपचार की वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में भी थोड़ा-सा विचार कर लेना आवश्यक है।

मानव-मूत्र में पाये जाने वाले द्रव्य

'जीव-शास्त्र' के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर जोन रोस्टेन्ड ने मानव-शरीर में रस ग्रंथियों की खोज से यह प्रमाणित किया है कि उन ग्रंथियों से झरने वाले 'जीवन रस'—जिन्हें हारमोन्स कहा जाता है। मानव-शरीर के लिए एक उपयोगी आहार है।

इस निष्कर्ष के फलस्वरूप ही शरीर-शास्त्री मूत्र-शक्ति के यथार्थ लाभ को स्वीकार कर उठे हैं।

रस ग्रंथियों में झरने वाले रसों का कुछ भाग गुर्दे में छनकर मूत्र के साथ बाहर निकलता है जिसका दुबारा प्रयोग करके अस्वस्थ शरीर को स्वस्थ बनाया जा सकता है।

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध शरीर-शास्त्री एलिस बारकर का कहना है कि मानव-शरीर किसी भी औषध-द्रव्य की अपेक्षा अधिक चमत्कारी

द्रव्य का निर्माण करता है। जो द्रव्य सबसे अधिक पूर्ण हैं और जिसमें शरीर के विष-जन्तुओं का नाश करने वाले विरोधीतत्व सबसे अधिक विद्यमान हैं—वह द्रव्य मनुष्य का अपना मूत्र ही है।

डाक्टर फैरन ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू वायो कैमिस्ट्री' में लिखा है कि स्वस्थ मनुष्य के मूत्र में भिन्न-भिन्न मात्रा में १८ प्रकार के तत्व पाये जाते हैं। उनमें से एक तत्व 'यूरिया' भी है, जो सबसे अधिक परिमाण में होता है और मानव-शरीर के लिए अत्यधिक पोषक होता है।

१०० सी. सी. अर्थात् ४ औंस मूत्र में पाये जाने वाले द्रव्य निम्नलिखित परिमाण में होते हैं—

द्रव्यों के नाम	परिमाण मिलिग्राम्स में
(१) यूरिया एन (नाइट्रोजन)	६८२·००
(२) यूरिया	१४५६·००
(३) क्रिएटोनोन एन०	३६·००
(४) क्रिएटीनीन	६७·२०
(५) यूरिक एसिड एन०	१२·३०
(६) यूरिक एसिड	३६·६०
(७) एमिनो एन०	६·७०
(८) एमोनिया एन०	५७·००
(९) सोडियम	२१२·००
(१०) पोटाशियम	१३७·००
(११) कैल्शियम	१९·५०

(१२) मैग्नेशियम ११·३०

(१३) क्लोराईड ३१४·००

(१४) टोटल सल्फेट ९१·००

(१५) इनआॅर्गेनिक सल्फेट ८३·००

(१६) इन ऑर्गेनिक फास्फेट १२७·००

(१७) टोटल एसिडिटी एज सी. सी.

(१८) एन।१० एसिड २५·८०

उक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि स्वस्थ मनुष्य के मूत्र में पाये जाने वाले सभी क्षार मानव-स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यहां यह भी स्मरण रखने योग्य है कि आहार में परिवर्तन के कारण क्षारों के परिमाण में भी न्यूनाधिकता आ जाती है। फिर भी इतना निश्चित है कि यूरिया की मात्रा सर्वाधिक रहती है और जैसा कि पहले बताया जा चुका है 'यूरिया' ही मानव-शरीर के लिए अत्यधिक पोषक है।

आयुर्वेद में मूत्र को 'विषघ्न' और 'रसायन' अर्थात् शरीर के भीतरी और बाहरी विषों को नष्ट करने वाला तथा वृद्धावस्था को रोककर यौवन देने वाला कहा है।

गाय के मूत्र का सेवन करने का परामर्श तो आयुर्वेद में कई स्थानों पर दिया गया है। गाय, बकरी, ऊंट तथा गधे के मूत्र का प्रयोग भी चिकित्सकों द्वारा विभिन्न रोगों में किया जाता है। ऐसी स्थिति में मानव-मूत्र का प्रयोग अवैज्ञानिक हो ही नहीं सकता।

विषस्यविषमौषधम्

जहर की चिकित्सा जहर है—यह आयुर्वेद का एक प्राचीन सिद्धान्त है। इसी प्रकार होम्पोपैथी में भी सम 'चिकित्सा' की प्रणाली अपनाई जाती है। एलोपैथी के वैक्सीनेशन के सिद्धान्त के अनुसार रोग के विकार वाले तत्व ही शरीर में वापस जाकर ऐन्टीबॉडी के रूप में काम करते और रोग का नाश करते हैं। वर्तमान काल में जर्मन डाक्टरों द्वारा मूत्र के इंजैक्शनों का प्रयोग भी किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः सभी चिकित्सा-पद्धतियां रोग विकार वाले तत्वों द्वारा ही रोग का विनाश करने का प्रकारान्तर से समर्थन करती हैं। तब मानव-शरीर से निकला हुआ विकार युक्त मूत्र उसी मानव-शरीर के विकारों को नष्ट करने में समर्थ क्यों नहीं होगा।

स्पष्ट है कि रोग के कारण शरीर में जो विकार उत्पन्न होते हैं उस विकृति के तत्व मूत्र द्वारा बाहर आ जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक रोगी के मूत्र में सहज पोषक तत्व तथा विकृत तत्व—ये दोनों ही प्रकार के तत्व पाये जाते हैं। अस्तु, जब उसी मूत्र को पुनः शरीर के भीतर पहुंचाया जाता है तब मूत्र के पोषक तत्व तो शरीर में पुनः पहुंचकर अपना स्थान ग्रहण करके शरीर को पुष्ट बनाते हैं तथा विकृत तत्व रोग को नष्ट करने का काम करते हैं। इस प्रकार किसी भी रोगी मनुष्य का मूत्र उसके लिए शरीर में पुनः पहुंचकर पोषक तथा रोग-नाशक का कार्य करने लगता है। मूत्रोपचार की वैज्ञानिकता में किसी प्रकार का सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

: ३ :

मूत्रोपचार की विधियां

मूत्र-प्रयोग की प्राचीन परम्परा तथा मूत्रोपचार की वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में संक्षिप्त प्रकाश डाला जा चुका है। अब हम स्व० जॉन आर्मस्ट्राङ्ग एवं प्रयोगवीर स्व० रावजी भाई द्वारा निर्धारित मूत्रोपचार की विधियों का उल्लेख करते हैं।

मूत्र-पान में अरुचि

मूत्र-पान के सबसे बड़े दोष उसका स्वाद तथा उसे सेवन करने के प्रति वितृष्णा माने जाते हैं। अतः इस सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति को यह जान लेना चाहिए कि जब शारीरिक स्वास्थ्य लाभ के लिए औषध के रूप में किसी वस्तु का सेवन किया जाये, तब उसके रूप, स्वाद एवं निर्माण पद्धति पर कोई ध्यान नहीं देना चाहिए।

आयुर्वेदिक यूनानी तथा ऐलोपैथिक पद्धति में अनेक औषधियां ऐसी हैं, जिनका निर्माण ऐसी-ऐसी वस्तुओं तथा ऐसी-ऐसी क्रियाओं द्वारा किया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति उन्हें देख ले, तो घृणा के कारण कभी उनके दर्शन तक न करे। उदाहरण के लिए कीटाण्ड, मांस, आंतें आदि तो दूर की वस्तुएं रहीं—विष्ठा (मल) द्वारा भी अनेक प्रकार की औषधियां तैयार की जाती हैं, परन्तु रोग-नाशक होने के कारण उनका सेवन करते हुए कोई भी नहीं हिचकिचाता। इसी प्रकार

ऐलोपेथी की अनेक औषधियां भी वेस्वाद, दुर्गन्धित अथवा देखने में खराब होती हैं परन्तु यदि जी नहीं करता है तो भी लोग अपनी नाक-आंख बन्द करके उन्हें पी जाते हैं।

इसलिए मूत्र-पान के लिए यह तर्क उपस्थित करना, कि उसका स्वाद अच्छा नहीं होता अथवा यह कि शरीर से निःसृत मल होने के कारण उसे पीने की इच्छा नहीं होती—सर्वथा असंगत है। जब शरीर से निःसृत विष्ठा द्वारा निर्मित औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है, तब रोगों को नष्ट करने की दिव्य-शक्ति रखने वाले अपने ही मूत्र का सेवन करने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट क्यों होनी चाहिए।

मूत्रोपचार के प्रकार

मूत्रोपचार के पांच प्रकार निश्चित किये गए हैं, जो निम्न-लिखित हैं।

(१) मूत्र-मर्दन ।

(२) मूत्र-पान ।

(३) मूत्र एवं पानी का सेवन करते हुए उपवास रखना ।

(४) मूत्र की पट्टी का प्रयोग ।

(५) मूत्र के साथ अन्य प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग ।

(१) मूत्र-मर्दन

अग्नि के घाव, फफोले, बड़े फोड़े, कटने के घाव तथा त्वचा की सूजन के अतिरिक्त अन्य सभी रोगों के उपचार का प्रारम्भ मूत्र-मर्दन अर्थात् मूत्र द्वारा मालिश से करना चाहिए।

'शिवाम्बु कल्प' में मालिश के लिए ३६ घण्टे पुराने मूत्र का उपयोग लाभदायक कहा है, जबकि जॉन आर्मस्ट्राङ्ग ने ५ से ७ दिन

तक के पुराने मूत्र का उपयोग करने की सम्मति दी है। प्रयोग वीर स्व०रावजी भाई भी जॉन आर्मस्ट्रांग के मत से सहमत हैं। अतः मालिश के लिए ५ से ७ दिन पुराने मूत्र का ही उपयोग करना चाहिए। इस अवधि तक रक्खे गये मूत्र में एमोनिया नामक द्रव्य अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है जो मालिश करने पर शरीर के छिद्रों में शीघ्र तथा अधिक मात्रा में प्रविष्ट हो जाता है और इसके कारण लाभ भी शीघ्र होता है ।

पुराने पेशाब का संग्रह

मालिश करने के लिए प्रतिदिन मूत्र की आवश्यकता होगी । ७ दिन पुराना मूत्र किस प्रकार प्राप्त किया जाए। इसके लिए सबसे सरल उपाय यह है कि चौड़े मुंह वाली सात बड़ी शीशियों को लेकर भली-भांति स्वच्छ कर लें। फिर उनमें से प्रत्येक शीशी में एक-एक दिन का मूत्र भरते चले जाएं। शीशियों के मुंह भली-भांति बन्द रक्खें तथा उनके ऊपर कागज के लेबुल चिपकाकर मूत्र भरने की तारीख लिख दें ।

इस प्रकार सात दिन में जब सात शीशियां मूत्र से भर जाएं, तब आठवें दिन उस शीशी में भरे हुए मूत्र को प्रयोग में लाएं, जो सबसे पहले दिन भरी गई थी। उसके बाद प्रतिदिन क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पांचवीं, छठी तथा सातवीं शीशी में भरे हुए मूत्र को व्यवहार में लायें।

प्रतिदिन जो शीशी खाली होती चली जाये, उसे साफ करके, उसमें उस दिन का मूत्र भर देना चाहिए और लेबुल पर नई तारीख लिख देनी चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन एक शीशी खाली होती जाएगी और एक शीशी भरती चली जाएगी, जिससे एक सप्ताह पुराने मूत्र को प्रतिदिन प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

जिन शीशियों में मूत्र भर जाये, उनके मुंह चौड़े होने चाहिए: ताकि उनमें सीधे ही पेशाब किया जा सके। पेशाब से भरी हुई

३

शीशियों का मुंह वन्द कर देना चाहिए, ताकि कोई बाहरी जीव-जन्तु उनमें न गिरे। मूत्र में स्वयं कोई कीटाणु उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि वह सबसे बड़ा कीटाणु-नाशक होता है।

मूत्र-मालिश का तरीका

मालिश प्रारम्भ करने से पूर्व मूत्र को थोड़ा गुनगुना गरम कर लेना चाहिए। जाड़े के दिनों में ऐसा करना अधिक आवश्यक है। फिर किसी कांच या चीनो मिट्टी को प्याली अथवा बड़ी कटोरी में शीशी का आधा पेशाव लेकर आधे शरीर की मालिश करना आरम्भ करें। पहले पांव के तलवों अथवा सिर से मालिश करना आरम्भ करके कमर तक मालिश करनी चाहिए। आधी मालिश के समाप्त होने पर कटोरी में जो पेशाव बच जाए, उसे फेंक देना चाहिए। तत्पश्चात् शीशी के शेष आधे पेशाव से शरीर के शेष आधे भाग की मालिश करनी चाहिए।

मालिश हमेशा हल्के हाथ से करनी चाहिए। जो बीमार व्यक्ति स्वयं मालिश न कर सके, उसके शरीर की मालिश किसी दूसरे व्यक्ति को इस सावधानो के साथ करनी चाहिए कि मालिश के समय रोगी को किसी प्रकार का कष्ट न हो ।

मालिश करते समय हाथ को ऊपर से नीचे की ओर लाना चाहिए न की ऊपर से नोचे की ओर ले जाया जाए।

एक वार की मालिश में दो घंटे का समय लगाना चाहिए। यदि दिन में दो बार मालिश करनी हो तो हरवार की मालिश में सवा घण्टे का समय लगाना चाहिए।

सिर, मुंह, गले तथा तलवे की मालिश में कुछ अधिक समय लगाना चाहिए।

यदि दो घण्टे तक मालिश करनी हो तो ३० मिनट तक सिर, मुंह एवं गले पर १५ मिनट तक पावों के तलवों पर तथा शेष समय में अन्य अंगों पर मालिश करनी चाहिए। सवा घण्टे की मालिश में २० मिनट का समय सिर, मुंह, एवं गले की मालिश के लिए, १० मिनट

का समय दोनों पांवों के तलवों की मालिश के लिए तथा शेष समय शरीर के अन्य भागों की मालिश के लिए देना चाहिए।

यदि किसी कारणवश मालिश के लिए अपना मूत्र पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो तो किसी अन्य स्वस्थ व्यक्ति के मूत्र को भी उपयोग में लाया जा सकता है, परन्तु यदि अपना ही मूत्र पर्याप्त हो तो उस स्थिति में किसी अन्य व्यक्ति के मूत्र का उपयोग नहीं करना चाहिए।

मूत्र मालिश के लाभ

किसी भी रोग के लिए मूत्रोपचार आरम्भ करने से पूर्व मूत्र की मालिश करना लाभदायक होता है। त्वचा सम्बन्धी रोगों पर तो मूत्र की मालिश की ही जाती है, परन्तु अन्य रोगों में, जिनमें मूत्र-पान किया जाता है, भी मूत्र की मालिश करना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि पान करने से जहां मूत्र शरीर के भीतर जाकर अपना प्रभाव दिखाता है, वहां मालिश करने से वह रोम-छिद्रों द्वारा भी शरीर के भीतर पहुंचकर अपने रोग-नाशक प्रभाव को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार मूत्र-पान के साथ ही मूत्र-मालिश भी करने से दोहरा लाभ होता है।

बहुत-से लोगों को चार-पांच दिन तक मूत्र-मालिश करने के बाद शरीर में खाज होने लगती है अथवा शरीर पर सफेद मुंह वाली छोटी-छोटी फुंसियां निकल आती हैं। इन लक्षणों को देखकर घबराने की आवश्यकता नहीं है और न इस कारण मूत्र-मालिश को ही बन्द करना चाहिए। कोई अन्य उपचार अथवा किसी औषध का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए।

खुजली होने अथवा फुंसियां निकलने का कारण यह होता है कि मूत्र मालिश के प्रभाव से शरीर की भीतरी गर्मी बाहर आने लगती

है, जिसके कारण उक्त लक्षण दिखाई देते हैं। अतः खुजली होने अथवा सफेद मुंह की फुंसियां निकल आने पर किसी प्रकार की घबराहट के बिना अपने मालिश-क्रम को चालू रखना चाहिए। साथ ही मूत्र द्वारा फुंसियों पर कुछ जोर से मालिश करनी चाहिए। ऐसा करने से दो-चार दिन में ही खुजली दूर हो जाएगी तथा नई फुंसियों का निकलना बन्द होकर पहले निकली हुई फुंसियां गायब हो जाएंगी।

दाद, खाज, खुजली, ऐक्जीमा आदि त्वचा के ऊपरी सामान्य रोग १०-१५ दिन की मूत्र-मालिश से दूर हो जाते हैं, परन्तु यदि रोग पुराना हो गया हो अथवा विभिन्न प्रकार की औषधियों के प्रयोग द्वारा शरीर को विष-द्रव्यों से भर दिया गया हो तो मूत्र-मालिश के साथ ही मूत्र-पान एवं पानी के साथ उपवास करने की भी आवश्यकता पड़ती है। मूत्र-पान एवं पानी के साथ उपवास की विधियों का वर्णन आगे किया गया है।

मूत्र-मालिश करने के १-२ घण्टे के बाद ताजे एवं स्वच्छ जल से स्नान करना चाहिए। रोगी की प्रकृति एवं शारीरिक स्थिति के अनुसार शीतल अथवा गुनगुने गरम पानी से भी स्नान किया जा सकता है, परन्तु स्नान के समय साबुन आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए। अलबत्ता शरीर को स्पंज अथवा खुरदरे तौलिये आदि से खूब रगड़-रगड़कर नहाना अच्छा रहता है।

(२) मूत्र-पान

मूत्र-पान से लोगों को स्वभावतः घृणा हो सकती है, अतः इस घृणा को हिम्मत के साथ दूर कर देने का प्रयत्न करना चाहिए। मूत्र-मालिश के दिनों में ही मूत्र-पान का अभ्यास कर लेना अच्छा रहता है।

प्रारम्भ में मूत्र को पीने की बजाए मूत्र द्वारा दांतों की सफाई तथा गरारे करने का अभ्यास डालना चाहिए। मूत्र द्वारा दांतों की सफाई तथा गरारे करने का लाभ यह होगा कि दांतों और गले में यदि कोई रोग होगा तो वह सर्वथा दूर हो जाएगा। साथ ही, यदि दांत हिलते होंगे तो वे जमकर सुदृढ़ हो जायेंगे।

इस प्रकार कुछ दिनों तक मूत्र द्वारा गरारे करने तथा दांतों की सफाई करने के बाद जब घृणा का भाव कम हो जाए, तब एक दिन प्रातःकाल दांत-मुंह आदि साफ करके हिम्मत के साथ आधा पाव मूत्र पी लेना चाहिए। एकबार जब मूत्र को पी लिया जाएगा, तब अगली बार घृणा के भाव में कमी हो जाएगी तथा कई बार मूत्र-पान कर चुकने पर जब अकल्पित लाभ होता हुआ दिखाई देगा, तब घृणा का भाव स्वतः ही सर्वथा समाप्त हो जाएगा। उस स्थिति में मूत्र-पान करने में कभी कोई कठिनाई नहीं होगी।

जब तक मूत्र-पान का अभ्यास न हो जाए, तब तक दिन में एक वार ही मूत्र-पान करना चाहिए। उसके बाद दो, तीन और चार बार तक पान करना हितकर होता है।

मूत्र-पान के लिए सदैव अपने मूत्र का ही प्रयोग करना चाहिए, चाहे उसका रंग, रूप, स्वाद कैसा भी क्यों न हो।

मूत्र-पान के लिए हमेशा ताजे मूत्र का ही प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् मूत्र को किसी कांच या चीनी, मिट्टी की प्याली आदि में करके उसे तुरन्त पी लिया जाना चाहिए।

यद्यपि जान आर्मस्ट्रांग तथा रावजी भाई ने मूत्रधारा के प्रारम्भिक तथा अन्तिम भाग को त्यागकर मध्य धारा को ग्रहण करने की बात नहीं कही है, परन्तु 'शिवाम्बुकल्प' में इसका उल्लेख किया गया है। अस्तु, यदि मूत्र की प्रारम्भिक तथा अन्तिम धारा को त्यागकर केवल

मध्य धारा को ही पोने के उपयोग में लिया जाए, तो वह और भी अच्छा रहेगा, लेकिन यदि मूत्र थोड़ी मात्रा में उतरता हो तो ऐसी स्थिति में प्रारम्भ अथवा अन्तिम धारा को त्याग देने की अपेक्षा सम्पूर्ण मूत्र का पान भो करने में कोई हानि नहीं है।

दूसरे मनुष्य का मूत्र पीना

मूत्रोपचार के लिए अपने हो मूत्र का सेवन करना हितकर माना गया है, परन्तु यदि किसी रोगी के पेशाब न उतरता हो अथवा विष खा लेने, सर्प आदि द्वारा डसे जाने अथवा किसी अन्य कारण से कोई व्यक्ति मूर्छित हो गया हो, तो ऐसी स्थिति में उसे किसी दूसरे स्वस्थ व्यक्ति का भी पेशाव पिलाया जा सकता है, परन्तु जब रोगी का अपना मूत्र उतरने लगे, तब उसे अपना ही मूत्र पोना चाहिए। दूसरे व्यक्ति के पेशाव का पान करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पुरुष के लिए पुरुष एवं स्त्रो के लिए स्त्री का ही मूत्र हो।

(३) उपवास के साथ मूत्रोपचार

पहले बताया जा चुका है कि गंभीर तथा पुराने रोगों को दूर करने के लिए मूत्रोपचार के साथ उपवास करना भी आवश्यक है। उपवास के दिनों में दिन-रात का सम्पूर्ण मूत्र पी लेना चाहिए। जो व्यक्ति रात्रि के समय का मूत्र न पीना चाहें अथवा रात्रि के समय के मूत्र को मालिश के काम में लेना चाहें और केवल दिन के समय का ही मूत्र पीना चाहिए। उन्हें अधिक दिनों तक उपवास करने की आवश्यकता पड़ेगी।

उपवास कितने दिनों का किया जाए—यह रोगी के रोग एवं शारीरिक स्वास्थ्य एवं सहनशीलता पर निर्भर करता है। सामान्यतः ५ से १० दिन तक का उपवास करना ठीक रहता है। इस अवधि में रोग दूर न हो पाए तो उपवास की अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

उपवास के दिनों में मूत्र-पान के साथ ही आवश्यकतानुसार निर्मल पानी का भी प्रयोग करना चाहिए। यदि किसी समय मूत्र-पान करते
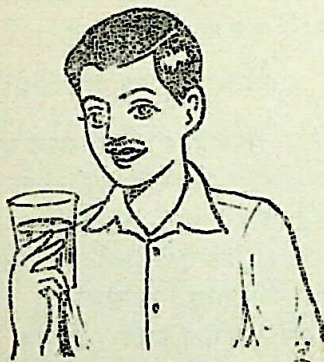
समय जी मिचलाने लगे तो कुछ क्षण के लिए मूत्र-पान करना बन्द कर देना चाहिए। फिर जब चित्त ठीक हो जाए, तब शेष मूत्र को पी लेना चाहिए।

मूत्र-पान के साथ मूत्र-मालिश

पानी पीने के साथ उपवास एवं मूत्र-पान के दिनों में भी मूत्र द्वारा शरीर की मालिश नियमित रूप से अवश्य करनी चाहिए। मूत्र-पान के साथ जब उपवास किया जाता है, तब मूत्र-पान के बाद हृदय एवं गुरदे को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिसके कारण शिथिल हुई हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। हृदय के अधिक काम करने से मूत्र आत्मसात् हो जाता है, परन्तु हृदय के काम करने की गति के बढ़ने के बाद यदि रक्त की गति न बढ़े तो हृदय की गति का बढ़ना हानि-कारक सिद्ध हो सकता है। इसके लिए सिर, मुंह, गले और सम्पूर्ण शरीर पर मूत्र की मालिश करना आवश्यक है। मूत्र की मालिश

करने से शरीर में रक्त की गति बढ़ती है, जिसके फलस्वरूप हृदय की धड़कन में कमी आ जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मूत्र को आत्मसात् करने के लिए हृदय को जो अतिरिक्त काम करना पड़ता है, वह रक्त की गति बढ़ जाने के कारण हानिकारक सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार मूत्र-पान के साथ-साथ मूत्र की मालिश करना अधिक आवश्यक तथा उपयोगी सिद्ध होता है।

मूत्र-पान के साथ उपवास करने से अधिक दुर्बलता का अनुभव नहीं होता, क्योंकि भोजन में उपस्थित जिन क्षारों द्वारा शरीर का पोषण होता है, वे अपने मूलरूप में मूत्र में उपस्थित रहते हैं, जिनके कारण शरीर का पोषण होता रहता है तथा भूख की आशक्ति का अनुभव नहीं होता। मूत्र जितना अधिक पिया जाता है, भूख की आशक्ति उतनी ही कम व्यापती है।

उपवास के समय की सावधानी

मूत्र-पान के साथ जब उपवास किया जाता है, तब मूत्र शरीर के भीतर आंतें, पेट, छाती, फेफड़े आदि स्थानों में जमे हुए कफ तथा अन्य प्रकार के मलों को बाहर निकालने का कार्य आरम्भ कर देता है। उसके कारण कभी-कभी दस्त अथवा वमन (कै) आदि होने लगते हैं। इन लक्षणों के दिखाई देने पर घबराना नहीं चाहिए और इन्हें स्वाभाविक प्रतिक्रिया समझकर किसी भी प्रकार का अन्य उपचार नहीं करना चाहिए। ये सभी लक्षण शरीर की भीतरी सफाई होने के हैं। जो व्यक्ति इन लक्षणों से घबराकर अन्य औषधोपचार करना चाहें, उन्हें मूत्र-प्रयोग एकदम बन्द कर देने के बाद ही किसी अन्य वस्तु का सेवन करना चाहिए। परन्तु अच्छा यही है कि इन उपसर्गों से घबराया न जाए। धैर्यपूर्वक इनका सामना किया जाए। जब शरीर का भीतरी मल बाहर निकल जाएगा, तब ये उपसर्ग स्वतः ही समाप्त हो जाएंगे।

उपवास को तोड़ना

उपवास के दिनों में मूत्र-पान, जल-पान तथा मूत्र-मालिश के अतिरिक्त और किसी पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए।

जिस दिन उपवास समाप्त करना हो उस दिन प्रातःकाल संतरे अथवा मोठी मौसमी का रस पीकर उपवास तोड़ना चाहिए। खट्टी मौसमी का रस नहीं पीना चाहिए। यदि संतरा और मौसमी में से कोई वस्तु उपलब्ध न हो तो उपवास तोड़ने के दिन की पूर्व रात्रि को किसी कांच अथवा चीनी-मिट्टी के पात्र में ५-७ खजूर अथवा एक छटांक बीज निकाली हुई कालीदाख को पाव भर पानी में भिगोकर रख देना चाहिए और प्रातःकाल उन्हें पानी में भली-भांति मसल कर उस पानी को किसी स्वच्छ कपड़े से छानने के बाद रोगी को पिला देना चाहिए, परन्तु खजूर अथवा कालीदाख का रस मधुमेह के रोगी को नहीं देना चाहिए। उसके लिए तो संतरे अथवा मौसमी का रस देना ही उचित है।

उक्त विधि से प्रातःकाल उपवास समाप्त करने के बाद मध्यान्ह के समय फलों के रस तथा सन्ध्या के समय चीकू, पपीता आदि रसदार फलों का सेवन करना चाहिए। दूसरे दिन प्रातःकाल पूर्वोक्त रसों में से कोई भी एक रस कुछ अधिक मात्रा में पीना चाहिए तथा मध्याह्न एवं सायंकाल को पहले दिन की ही भांति फलों के रस तथा रसदार फलों का सेवन करना चाहिए।

तीसरे दिन प्रातःकाल संतरे अथवा मौसमी का रस पीकर, मध्यान्ह काल में बहुत थोड़े नमक वाला मूंग का पानी तथा सन्ध्या के समय गाय के दूध का सेवन करना चाहिए।

इस प्रकार प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रुचि एवं शक्ति के अनुसार आहार में वृद्धि करते जाना चाहिए। उपवास-काल में जितनी

सावधानी रखनी अपेक्षित है, उपवास को तोड़ने के बाद कम-से-कम एक सप्ताह तक कहीं उससे भी अधिक सावधानी रखना आवश्यक है। जितने दिनों का उपवास किया गया हो, उपवास तोड़ने के बाद कम-से-कम उतने ही दिनों तक आहार-विहार का संयम रखना आवश्यक हैं।

उपवास काल में तो जल एवं मूत्र के अतिरिक्त किसी वस्तु का सेवन किया ही नहीं जाता। उपवास समाप्त करने के तीसरे दिन से थोड़ा-थोड़ा नमक लेने की बाबत ऊपर बताया जा चुका है। इस बीच की अवधि में नमक का बिल्कुल व्यवहार न करने के कारण यह सम्भव हो सकता है कि जब नमक का पुनः सेवन आरम्भ किया जाए, तो मुंह पर थोड़ी-सी सूजन दिखाई देने लगे, परन्तु इस सूजन के कारण घबराने या चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यह सूजन दो-तीन दिन बाद स्वतः ही समाप्त हो जाती है।

(४) मूत्र की पट्टी का प्रयोग

शरीर पर कहीं छुरी आदि का जख्म हो जाए, आग से चमड़ी जल

जाए, कोई बड़ा फोड़ा या घाव हो जाए, फफोले पड़ जाएं, सूजन हो अथवा आंखें दुखने को आ जाएं—तो ऐसी स्थितियों में मूत्र की पट्टी रखने का नियम है, क्योंकि ऐसी जगहों पर मूत्र की मालिश नहीं हो सकती।

मूत्र की पट्टी रखने की सामान्य विधि यह है कि एक सफेद एवं स्वच्छ वस्त्र की पट्टी को मूत्र में भिगोकर तर कर लिया जाए, फिर उसे दो-चार तह करके घाव, फोड़ा आदि के स्थान पर रख दिया जाए। पट्टी को सूखने न देने के लिए उसे बीच-बीच में मूत्र द्वारा तर करते रखना चाहिए।
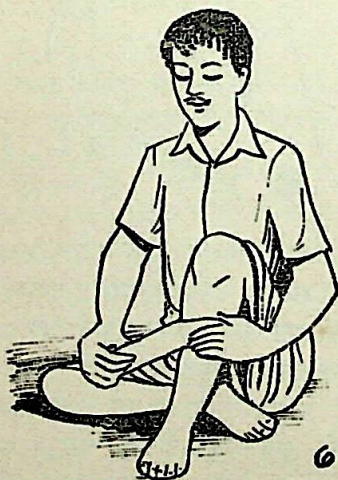
इस प्रकार से मूत्र के रोग-नाशक तत्त्व रोगी के शरीर में भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं और मूत्र भीतर तथा बाहर—दोनों ओर से लाभ पहुंचाता है।

मूत्र की पट्टी को रोग को आवश्यकता के अनुसार कई घण्टों तक रक्खा जा सकता है। पट्टी को तर बनाए रखने के लिए यदि रोगी का अपना मूत्र अपर्याप्त हो, तो उस स्थिति में किसी दूसरे स्वस्थ मनुष्य के मूत्र का उपयोग किया जा सकता है।

परन्तु यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है कि रोगी के लिए जब किसी अन्य व्यक्ति के मूत्र को उपयोग में लेना हो तो रोगी पुरुष के लिए किसी पुरुष का तथा रोगिणी स्त्री के लिए किसी स्त्री का मूत्र ही प्रयोग में लाना चाहिए। पुरुष के लिए स्त्री का तथा स्त्रो के लिए पुरुष के मूत्र का उपयोग करना वर्जित है। यह नियम केवल मालिश के कार्य के लिए ही नहीं, अपितु मूत्रोपचार की सभी विधियों के लिए लागू होता है।

(५) मूत्र के साथ अन्य प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग

स्व. रावजी भाई ने स्वानुभव के आधार पर मूत्र के साथ अन्य प्राकृतिक तत्त्वों के उपयोग की आवश्यकता को भी स्वीकार किया है। उनका कहना है कि पंच तत्त्वों द्वारा निर्मित मानव-शरीर जब अस्वस्थ हो जाए, तब उसे स्वस्थ बनाने के लिए उन्हीं तत्त्वों की सहायता लेना स्वाभाविक मर्यादा के अन्तर्गत आता है।

मूत्र के साथ अन्य प्राकृतिक तत्त्वों तथा प्रयोगों को उन्होंने इस प्रकार से निर्धारित किया है—

(१) कंकड़-रहित चिकनी मिट्टी को मूत्र में भिगोकर उसे पेट, पेढ़ू, सिर आदि के ऊपर रखना।

(२) मूत्र में पानी मिलाकर एनिमा लेना।

(३) मूत्र को गरम करके उपयोग में लाना।

(४) मूत्र द्वारा सेक करना।

(५) जल-मिश्रित मूत्र की भाफ द्वारा स्नान।

(६) मूत्र को शीशी में भर कर उसे सूर्य-किरणों द्वारा प्रभावित करना।

(७) आधी भरी हुई शीशी में मूत्र को अनेक बार हिला-हिलाकर उसकी शक्ति को बढ़ाना, तत्पश्चात् उसका उपयोग करना।

(८) मूत्र को नाक से सूंघना।

उपर्युक्त प्रयोगों को रोगी की प्रकृति, आयु, शारीरिक रचना तथा रोग की स्थिति को ध्यान में रखते हुए व्यवहार में लाने की सम्मति उन्होंने दी है, साथ ही यह भी कहा है कि इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य उपाय हो सकते हैं, परन्तु मूल-मर्यादा का त्याग कभी नहीं करना चाहिए अर्थात् प्रत्येक स्थिति में मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश को ही प्राथमिकता देनी चाहिए।

: ४ :

मूत्रोपचार की सावधानियां

स्व० रावजी भाई ने मूत्रोपचार से उत्पन्न होने वाले खतरों तथा चेतावनियों का उल्लेख करते हुए जिन बातों पर प्रकाश डाला है, उनका विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

मूत्रोपचार के खतरे

मूत्रोपचार की प्रतिक्रिया-स्वरूप जो खतरे रोगी के सामने आते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(१) पांच-सात दिन तक मूत्र-मालिश करने पर शरीर में खुजली होने लगती है। रोगी को उससे घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि वह खुजली फिर मूत्र-मालिश से ही स्वतः दूर भी हो जाती है।

(२) मूत्र-मालिश की अवधि में कुछ लोगों के शरीर पर सफेद मुंह वाली लाल फुंसियां निकल आती हैं। रोगी के रक्त में जितनी अधिक गरमी होती है, फुंसियां उतनी ही अधिक मात्रा में निकलती हैं। फुंसियों का निकलना शरीर के भीतरी विकारों के बाहर निकलने का चिन्ह है। अतः इन फुंसियों को देखकर घबराना नहीं चाहिए, अपितु ऐसी स्थिति में मूत्र-मालिश इतनी जोर से करनी चाहिए कि वे फुंसियां फूट जाएं और मूत्र उनमें प्रविष्ट हो जाए। इस प्रकार की

मालिश करने के घन्टे-दो घन्टे बाद ताजे अथवा गुनगुने पानी से सावुन आदि लगाए बिना ही स्नान कर लेना चाहिए। इस विधि से फुंसियां कुछ ही दिनों में स्वतः ठीक हो जाएंगी तथा नई फुंसियों का निकलना भी वन्द हो जाएगा। जो फुंसियां निकल चुकी होंगी, उनका कोई दाग भी शरीर पर नहीं रह जाएगा।

(३) मूत्र-पान से रोगी को उल्टी तथा दस्त भी होने लगते हैं। जिस प्रकार फुंसियों का निकलना शरीरस्थ विजातीय द्रव्यों के बाहर निकलने का प्रतीक है; इसी प्रकार उल्टी (वमन या कै) अथवा दस्तों का होना भी शरीरस्थ विकारों के वाहर निकलने का चिन्ह है। जब किसी रोगी को ऐसे लक्षण प्रकट हों, तव उसे न तो घबराना चाहिए और न किसी अन्य औषध अथवा उपचार का ही प्रयोग करना चाहिए ऐसा करना वहुत हानिकर सिद्ध हो सकता है। यदि औषध आदि किसी अन्य वस्तु का सेवन करना ही हो तो मूत्रोपचार को एकदम वन्द कर देने के वाद भले ही करना चाहिए, परन्तु यदि धैर्य और विश्वास रक्खा जाए तथा घवराहट में मूत्रोपचार को वन्द करके किसी अन्य औषध, इंजैक्शन आदि का उपयोग न किया जाए, तो वमन तथा दस्त कुछ दिनों बाद स्वतः ही ठीक हो जाते हैं। जिन दिनों में वमन या दस्त अथवा दोनों की शिकायत हो, उन दिनों में किसी औषध आदि का सेवन न करने के अतिरिक्त मूत्रोपचार के नियम में तनिक भी ढील नहीं आने देनी चाहिए। कै तथा दस्त का होना प्रत्येक स्थिति में लाभकारक ही समझना चाहिए। यदि किसी रोगी के शरीर की विशेष रचना के कारण उसे वमन और दस्त न हों, तो उस सम्वन्ध में भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है।

(४) अनेक बार ऐसा भी होता है कि मुख्य रोग तो छिप जाता है, उसके स्थान पर दूसरा रोग उभर आता है। ऐसी स्थिति में रोगी के लिए यह उचित है कि वह मुख्य रोग को गौण समझकर आवश्यक

परहेज तथा उपचार से मुंह न मोड़े अन्यथा छिपे हुए मुख्य रोग के भयंकर बन जाने की सम्भावना रहेगी।

(५) जब रोगी को पर्याप्त मात्रा में मूत्र नहीं उतरता, तब प्रायः उसके शरीर पर सूजन आ जाया करती है। ऐसी स्थिति में यदि रोगी के पेड़ू पर मूत्र की पट्टी निरन्तर रक्खी जाए तो मूत्र के अधिक मात्रा में उतरने तथा सूजन के दूर हो जाने की आशा की जा सकती है।

चेतावनियां

मूत्रोपचार में निम्नलिखित चेतावनियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

(१) मूत्रोपचार प्रारम्भ करने से पूर्व ही रोगी को दृढ़ निश्चयी बन जाना आवश्यक है। एक बार जब मूत्रोपचार प्रारम्भ कर दिया जाए, तब उसे पूर्ण लाभ होने तक निरन्तर चालू रखना चाहिए। किसी भी कारण से घबराकर बीच में ही इस उपचार को बन्द नहीं कर देना चाहिए।

(२) मूत्रोपचार की अवधि में आवश्यक परहेज रखना आवश्यक है। साथ ही यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि उस अवधि में अन्य किसी भी प्रकार की औषध आदि का सेवन न किया जाए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना बनी रहेगी।

(३) मूत्रोपचार आरम्भ करने से पूर्व यदि किसी अन्य औषध आदि का सेवन किया जाता रहा हो तो उसे एकदम बन्द कर देना चाहिए तथा औषधोपचार को बन्द किये हुए जब चार दिन का समय व्यतीत हो जाए, तभी मूत्रोपचार आरम्भ करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो औषध आदि के अंश मूत्र में बने रहेंगे और उस स्थिति में वह मूत्र आरोग्यदायक सिद्ध नहीं हो सकेगा। औषधोपचार बन्द कर

देने के चार दिन बाद मूत्र में उस औषध का प्रभाव नहीं रहता, अतः उसी समय से मूत्रोपचार करना ठीक है।

(४) उपवास के साथ जब मूत्रोपचार किया जाए, उस अवधि में मूत्र-पान तथा जल-पान के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु—दूध, फलों का रस, अन्न आदि—का सेवन नहीं करना चाहिए। रात-दिन केवल मूत्र तथा आवश्यकता एवं इच्छानुसार जल पर भी निर्भर रहना चाहिए।

(५) लो ब्लड प्रैशर के रोगियों को, अर्थात् जिनके शरीर में खून का दवाव कम हो, उन्हें उपवास नहीं करना चाहिए। ऐसे रोगी यदि उपवास करते हैं तो रक्त का दवाव और अधिक कम हो जाता है, जिसके कारण उनकी शारीरिक शक्ति में और कमी आती है। इसका दुष्प्रभाव हृदय, जिगर तथा गुरदे पर पड़ता है। ऐसे रोगियों को उपवास न करके मूत्र-मालिश करनी चाहिए तथा जितना पचाया जा सके, उतने ही मूत्र का पान करना चाहिए। साथ ही एक वार हल्का भोजन करके अपनी शक्ति को बनाए रखना चाहिए। इस प्रकार के रोगियों को अधिक समय तक मूत्रोपचार पर निर्भर रहना पड़ता है। उदाहरण के लिए उपवास सहित मूत्रोपचार करने वाला रोगी व्यक्ति यदि १० दिन में स्वास्थ्य लाभ कर सकता है, तो उपवास-रहित मूत्रोपचार करने वाले व्यक्ति तीन मास में स्वस्थ हो जाते हैं। अस्तु, ऐसे रोगियों को लम्बे समय तक, धैर्यपूर्वक मूत्रोपचार करते रहना चाहिए।

(६) मूत्रोपचार की अवधि में संयम अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है। जो व्यक्ति ऐसा करने को प्रस्तुत न हों, उन्हें मूत्रोपचार का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(७) मूत्रोपचार की अवधि में किसी के बहकावे में आने की

आवश्यकता नहीं है। दृढ़ श्रद्धा और लग्न के साथ इस प्रयोग को पूरा करना चाहिए।

(८) मूत्रोपचार द्वारा जब शरीर स्वस्थ हो जाए, तब भी आहार-विहार आदि के सम्बन्ध में सजग एवं संयमित बने रहना आवश्यक है, ताकि फिर कोई रोग शरीर को अपना शिकार न बना ले। स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य नियमों का पालन करते रहना तो वैसे भी सभी लोगों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(९) मूत्रोपचार आरम्भ करने से पूर्व मद्य, तम्बाकू अथवा अन्य प्रकार के नशों एवं व्यसनों को सर्वथा त्याग देना आवश्यक है।

(१०) मूत्रोपचार करने वालों को निम्नलिखित वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए—

मिर्च-मसाले की वस्तुएं, तली हुई वस्तुएं; मैदा से बनी हुई वस्तुएं, पेश्च्यूराइज्ड दूध तथा उससे बनी हुई वस्तुएं, वनस्पति घी, अधिक खट्टे, खारे तथा चरपरे पदार्थ, अचार, चटनी, दानेदार खांड (चीनी), सैक्रीन, टीन के डिब्बों अथवा बोतलों में बन्द करके रक्खे हुए फल अथवा अन्य खाद्य-पदार्थ तथा मशीन द्वारा साफ किये गए चावल आदि।

(११) निम्नलिखित वस्तुओं का सेवन किया जा सकता है—

गुड़, ताड़ गुड़, शहद; खंडसारी, कोदों, हाथ के कुटे हुए चावल; हरी सब्जियां; ताजा फल, दूध, शुद्ध घी आदि।

●

उपसंहार

मानव-मूत्र के प्रयोग की परम्परा, मूत्रोपचार की वैज्ञानिकता, मूत्रोपचार की विधियों तथा मूत्रोपचार की सावधानियों के विषय में इस पुस्तक के पिछले पृष्ठों में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

चिकित्सा के क्षेत्र में जब-जब भी नए प्रयोग किये गए हैं, तब-तब तत्कालीन चिकित्सा शास्त्रियों द्वारा उनका विरोध किया गया है, परन्तु जब हजारों व्यक्तियों ने उन प्रयोगों का लाभ प्राप्त किया है, तब विवश होकर चिकित्सा शास्त्रियों को अपनी मान्यताएं बदलनी पड़ी हैं तथा उन नवीन पद्धतियों को चिकित्सा के योग्य घोषित करना पड़ा है। स्व-मूत्र के उपयोग के सम्बन्ध में भी इन दिनों ऐसी ही बात है। स्व० रावजी भाई की तरह हमें भी यह विश्वास है कि वह दिन शीघ्र ही आएगा, जब आधुनिक चिकित्सा शास्त्री स्व-मूत्र के प्रयोग को विज्ञान-सम्मत ठहराये जाने की घोषणा करेंगे और तब इस प्रयोग के सम्बन्ध में अब तक फैली हुई भ्रान्त धारणाओं का भी निराकरण हो जाएगा।

अन्त में, हम प्रयोग वीर स्व० रावजी भाई पटेल के प्रति पुनः अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने अपने साहसिक प्रयोगों द्वारा मानव-मूत्रोपचार की पद्धति को पुनरुज्जीवित एवं प्रचारित-प्रसारित करके मानवता की सेवा में अपना बहुमूल्य योगदान किया है।

१२१-७० टक्निकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित

: ५ :

मूत्र-चिकित्सा की विधियां

प्रयोगवीर स्व० श्री रावजी भाई पटेल ने अपनी पुस्तक में 'पुनरुद्धारक के अनुभव' तथा 'पूर्वानुभव की कसौटी पर' शीर्षक खण्डों के अन्तर्गत विभिन्न रोगों पर मूत्रोपचार के प्रभाव के जो उदाहरण दिए हैं, उनके आधार पर मूत्र-चिकित्सा की विधियों का निर्धारण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है—

क्षय रोग

क्षय रोग किसी भी प्रकार का क्यों न हो, इसमें लम्बे उपवास के साथ प्रतिदिन मूत्र-पान तथा शरीर पर मूत्र की मालिश करनी चाहिए। उपवास के दिनों में मूत्र-पान के साथ ही स्वच्छ जल का पान भी करना आवश्यक है। मूत्र-पान दिन में ४ से ८ बार तक किया जा सकता है। रोग जितना पुराना हो, उपवास तथा उपचार उतने ही अधिक समय तक करना चाहिए।

ग्रेन्ग्रीन (अंग का मर जाना)

इस रोग में प्रायः १ मास तक मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश की आवश्यकता होती है। पीड़ा वाले स्थान पर मूत्र से भीगी हुई पट्टियां भी रखनी चाहिए। मूत्रोपचार की अवधि में उपवास रखना भी आवश्यक है। उपवास-काल में स्वच्छ जल का प्रयोग करना चाहिए।

कैंसर

हर प्रकार के कैंसर के लिए उपवास सहित मूत्र-पान करना चाहिए। साथ ही स्वच्छ जल का सेवन भी करते रहना चाहिए। कैंसर की गांठ हो तो सम्पूर्ण शरीर पर मूत्र की मालिश भी करनी चाहिए।

गुर्दे के रोग

गुर्दे के रोगों में उपवास के साथ मूत्र-पान तथा स्वच्छ जल का सेवन करना चाहिए। रोगी के शरीर पर एक साथ दो घण्टे तक मूत्र की मालिश भी दिन में दो बार करनी चाहिए।

हृदय रोग

हृदय रोग में दिन भर में एक बार हल्का भोजन लेते हुए दिन भर के मूत्र का पान करते रहना चाहिए। साथ ही तलवों, मुंह तथा सिर पर प्रतिदिन मूत्र की दो घण्टे तक मालिश करनी चाहिए।

विविध प्रकार के ज्वर

उपवास करते हुए मूत्र-पान एवं जल-पान करने से हर प्रकार के ज्वर ठीक हो जाते हैं। ज्वर रोगी इस उपचार से प्रायः १० दिन में ही स्वस्थ हो जाता है।

अन्य वृद्धि

उपवास के साथ मूत्र-पान एवं जल-पान तथा रोगी की छाती, पेडू एवं सिर पर एक दिन पुराने पेशाब की पट्टियां रखनी चाहिएं। हाथ तथा पांवों पर भी मूत्र में भीगी पट्टियां बांधना लाभदायक रहता है।

जलने के घाव

उपवास के साथ मूत्र-पान तथा जख्मी भागों पर मूत्र में भीगी हुई पट्टियां बांधना तथा पट्टियों को मूत्र से बार-बार सींचते रहना लाभदायक है।

मासिक धर्म की व्याधियां

उपवास के साथ मूत्र-पान एवं स्वच्छ जल का सेवन करना हित-कर है।

मोटापा

उपवास के साथ मूत्र-पान, स्वच्छ जल का सेवन तथा सम्पूर्ण शरीर पर मूत्र की मालिश करनी चाहिए।

पीलिया

उपवास के साथ मूत्र-पान तथा स्वच्छ जल का सेवन करने से लाभ होता है।

नेत्र रोग

१० से २५ दिन तक के उपवास के साथ मूत्र-पान एवं स्वच्छ जल का सेवन करने से अनेक प्रकार के नेत्र रोगों को लाभ होता है।

दमा

उपवास के साथ मूत्र-पान एवं स्वच्छ जल का सेवन तथा पांच-सात दिन पुराने मूत्र से सम्पूर्ण शरीर की मालिश करते रहने से लगभग १ मास में यह रोग दूर हो जाता है। मालिश दिन में दो बार कम-से-कम दो घण्टे तक करनी चाहिए।

हाई ब्लड प्रैशर

उपवास के साथ मूत्र-पान एवं स्वच्छ जल का सेवन तथा मूत्र द्वारा सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करना हितकर है।

लो ब्लड प्रैशर

मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश से यह रोग दूर हो जाता है। भोजन हल्का करना चाहिए।

सर्दी खांसी

मूत्र-पान करने से ही लाभ होता है। यदि अजीर्ण हो तो उपवास करना चाहिए अन्यथा आहार में कमी कर देनी चाहिए।

काली खांसी

मूत्र-पान से ही इस रोग में लाभ होता है। दिन में ५-६ बार मूत्र-पान करना चाहिए।

गले की गांठें

मूत्र-पान दिन में ५-६ बार करें। रोगी स्थान पर दिन में एक बार मूत्र की मालिश करना भी अच्छा है।

कंठमाला

दिन में एक बार मूत्र की मालिश तथा ६-७ बार मूत्र-पान करें।

लगभग दो मास में रोग पूरी तरह दूर हो सकता है। आहार हल्का लेना चाहिए।

जीभ के छाले

दिन में ५-७ बार मूत्र-पान करने से एक-दो दिन में ही छाले तथा गले की खराश दूर हो जाती है।

पेट का दर्द

मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश से यह रोग ठीक हो जाता है। रोग पुराना हो तो उपवास भी करना चाहिए।

कब्ज

दिन में ३-४ बार मूत्र-पान करने से यही रोग दूर हो जाता है। पुराना होने पर उपचार अधिक दिनों तक करना चाहिए। पुराने रोग में मूत्र-मालिश करना भी आवश्यक है।

पेट की गैस

मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश करते रहने से यह रोग दूर हो जाता है।

जलोदर

उपवास के साथ मूत्र-पान करना चाहिए तथा पेट पर पेशाब से भीगी हुई पट्टियां रखनी चाहिएं। लगभग २१ दिन के प्रयोग से रोग ठीक हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर पर मूत्र की मालिश करने से शीघ्र लाभ होता है।

आंतों के रोग

मूत्र-पान तथा मूत्र-मालिश दोनों ही आवश्यक हैं। दिन में ३ बार मूत्र-पान करना चाहिए। रोग पुराना हो तो इससे अधिक बार भी मूत्र-पान किया जा सकता है।

बवासीर

उपवास के साथ मूत्र-पान तथा स्वच्छ जल का सेवन करें, साथ ही प्रतिदिन दो बार एक-दो दिन पुराने मूत्र की मालिश भी करें।

मधुमेह

उपवास के साथ मूत्र-पान करने से लाभ होगा। दिन भर का पूरा मूत्र पी लेना चाहिए। नये रोगी बिना उपवास किये, केवल मूत्र-पान द्वारा ही ठीक हो सकते हैं।

गुरदे की पथरी

दिन में ३-४ बार मूत्र-पान करें। पुराने पेशाब से मूत्र-मालिश करें तथा दर्द वाले स्थान पर मूत्र में भीगी हुई पट्टी रक्खें।

सन्धि पीड़ा

मूत्र-पान तथा मूत्र-मालिश करें। पीड़ा वाले स्थान पर मूत्र में भीगी हुई पट्टी भी रक्खें।

गठिया

प्रातःसायं मूत्र-पान करें तथा पुराने मूत्र से सम्पूर्ण शरीर की मालिश करते रहें। लगभग २०-२५ दिन के उपचार से रोग ठीक हो जाएगा।

कंधों का दर्द

मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश नियमित रूप से करते रहें।

दृष्टि-मान्द्य

मूत्र द्वारा आंखें धोएं तथा मालिश करें साथ ही मूत्र-पान भी करते रहें। इस प्रयोग से थोड़े ही दिनों में दृष्टिमान्द्य की शिकायत दूर हो जाएगी तथा चश्मा भी छूट जाएगा।

टांगों की सूजन

दिन में तीन-चार बार मूत्र-पान करें तथा रोगी स्थान पर मूत्र में भीगी पट्टी रक्खें। पुराने रोग में उपवास के साथ मूत्रोपचार करें तो शीघ्र लाभ होगा।

दाद और चर्म रोग

मूत्र-पान करें तथा रोगी स्थान पर मूत्र की मालिश भी करते रहें। रोग पुराना हो तो एक सप्ताह के उपवास के साथ उपचार आरम्भ करें।

छाजन

दिन में ४-५ बार मूत्र-पान करें तथा प्रतिदिन गरम पेशाब से आधा घण्टा तक रोगी स्थान की मालिश करें। यदि सम्पूर्ण शरीर की मालिश करें तो और भी अच्छा रहेगा।

कोढ़

उपवास के साथ मूत्र-पान तथा मूत्र-मालिश करें। श्वेत कुष्ठ को दूर करने के लिए भी यही उपाय उचित है। मालिश दिन में द बार तथा मूत्र-पान ५-७ बार करना चाहिए। उपवास के दिनों मे स्वच्छ जल का सेवन भी करना चाहिए।

मोतिया बिन्द

दिन में दो-तीन बार पेशाब से आंखें धोएं तथा दिन में ४- बार ३-४ औंस की मात्रा में स्वमूत्र का पान करें।

इसी उपचार से नेत्र पीड़ा, आंखों की लाली, आंखों से पान गिरना, रतौंधी आदि अनेक प्रकार के नेत्र रोग ठीक हो सकते हैं।

इस प्रयोग से नेत्र ज्योति तीक्ष्ण होकर चश्मा छूट जाता है तथ कुकरे आदि भी ठीक हो जाते हैं।

कान का बहना

अपने पेशाब को थोड़ा-सा गरम करके उसे छोटी पिचकारी भरकर कान को धो डालें। फिर उसी गरम पेशाब की दो-तीन बूं कान में डालकर ऊपर से रूई का फाहा रख दें। तीन-चार दिन प्रयोग से ही कान का दर्द तथा कान का बहना ठीक हो जाएगा।

कान का बजना

पहले ताजा स्व-मूत्र की २-३ बूंदें प्रातः सायं कान में डालें। दो तीन दिन बाद कान का मैल बाहर निकल आने पर गुनगु पेशाब की बूंदें डालना आरम्भ करें। ऊपर से रूई का फाहा र दें। १०-१५ दिन के उपचार से रोग दूर हो जाएगा।

बहरापन

प्रतिदिन स्व-मूत्र का पान तथा मूत्र-मालिश करें। मूत्र-पान दि

में ५-६ बार तक करना चाहिए। साथ ही पेशाब से कान धोएं तथा दो-तीन बूंदें कान में डालें भी। थोड़े ही दिनों के उपचार से लाभ दिखाई देगा।

दांत का दर्द

जिस दांत में दर्द हो, उस पर अपने पेशाब में तर किया हुआ रूई का फाहा रक्खें।

मसूढ़ों से पीप आना

अपने पेशाब से दिन में ३-४ बार कुल्ले करें। साथ ही थोड़ा-थोड़ा मूत्र-पान भी करें इससे रोग दूर होगा।

दांत का हिलना

स्व-मूत्र से कुल्ले करें तथा स्व-मूत्र की ही मालिश करें। इससे हिलता हुआ दांत जम जाएगा।

पायरिया

प्रतिदिन ३-४ बार स्व-मूत्र की दांतों पर मालिश तथा स्व-मूत्र से ही कुल्ले करें। लगभग दो मास के प्रयोग से ही रोग जड़ से दूर हो जाएगा।

पीनस

सुबह का पहला पेशाब दोनों नासिका छिद्रों से पिएं। ४-६ मास तक निरन्तर इस प्रयोग के करते रहने से रोग दूर हो जाएगा।

गले की तकलीफ

स्व-मूत्र के गरारे करने से गले की तकलीफ दूर हो जाती है।

सिर दर्द

स्व-मूत्र का दिन में तीन-चार बार पान करें। नया सिर दर्द एक ही दिन में तथा पुराना सिर दर्द तीन-चार दिन में दूर हो जाएगा।

गंज

अपने ही मूत्र से सिर को धोएं तथा नारियल के तेल में अपना ही पेशाब मिलाकर उससे सिर की मालिश कराएं। इस प्रयोग से कुछ ही दिनों में गंज रोग दूर हो जाता है।

आधासीसी

मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश दिन में दो-तीन वार करें, इससे रोग ठीक हो जाएगा।

भगन्दर

दिन में ४-५ बार स्व-मूत्र का पान करें तथा स्व-मूत्र में भिगोया हुआ मुलायम कपड़ा व्रण के ऊपर रक्खें। लगभग दो मास के प्रयोग से ही रोग ठीक हो जाता है।

मिरगी

स्व-मूत्र का नियमित रूप से पान करते रहें। दिन में ३-४ वार इस प्रयोग से थोड़े ही दिनों में रोग दूर हो जाएगा।

फीलपांव

स्व-मूत्र का पान एवं स्व-मूत्र की मालिश नियमित रूप से करते रहें। चार-पांच मास में ही पर्याप्त लाभ दिखाई देगा।

शरीर की सूजन

उपवास के साथ मूत्र-पान करें तथा तीन-चार दिन पुराने पेशाब से प्रतिदिन एक घण्टा सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करें। रोग जल्दी ही ठीक हो जाएगा।

चोट और घाव

स्व-मूत्र से भीगी हुई मुलायम कपड़े की पट्टी रोगी स्थान पर रख दें। इससें रक्त का बहना बन्द हो जाएगा। पट्टी को स्व-मूत्र से तर बनाए रहें तो २-३ दिन में ही चोट और घाव ठीक हो जाएंगे।

प्रदर—आठ दिन उपवास के साथ मूत्र-पान एवं मूत्रमालिश करें। फिर उपवास तो समाप्त कर दें, परन्तु मूत्र-पान एवं मूत्र-मालिश को चालू रक्खें। उपचार के पहले दिन से ही स्व-मूत्र में भीगे हुए रूई के फाहे को दिन में चार बार योनि में रक्खें। इस उपचार से प्रदर की बीमारी लगभग एक मास में ही ठीक हो जाती है।

आवश्यक—मूत्रोपचार के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए, भारत सेवक समाज, पानकोनाका, अहमदाबाद से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

१२१७१ टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित